इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

# एम एच डी-17
# भारत की चिंतन परंपराएँ और दलित साहित्य



# संत साहित्य परंपरा

# 4

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

— *इन्दिरा गांधी*

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

***"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."***

**– Indira Gandhi**

इग्नू
जन-जन का विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

# एम एच डी - 17
# भारत की चिंतन परंपराएँ और दलित साहित्य

खंड

4

## संत साहित्य परंपरा


इकाई 11
कन्नड की संत भक्ति परंपरा 5

इकाई 12
तेलुगु संत परंपरा 25

इकाई 13
निर्गुण संत परंपरा 36

## पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

**प्रो. ओम अवस्थी**
गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

**प्रो. गोपाल राय (सेवानिवृत्त)**
सी–3, कावेरी,
इग्नू आवासीय परिसर, मैदान गढ़ी
नई दिल्ली .

**प्रो. नामवर सिंह (सेवानिवृत्त)**
32–ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

**प्रो. नित्यानंद तिवारी (सेवानिवृत्त)**
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

**प्रो. निर्मला जैन (सेवानिवृत्त)**
ए–21/71, कुतुब एन्क्लेव
फेज–I, गुड़गांव, हरियाणा

**प्रो. प्रेम शंकर (सेवानिवृत्त)**
बी–16, सागर विश्वविद्यालय
परिसर, सागर

**प्रो. मुजीब रिज़वी (सेवानिवृत्त)**
220, जाकिर नगर
नई दिल्ली

**प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)**
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

**प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी**
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

**प्रो. लल्लन राय (सेवानिवृत्त)**
3, प्रीत विला, समर हिल, शिमला

**स्व. प्रो. शिवकुमार मिश्र**
गुजरात

**स्व. शिव प्रसाद सिंह**
वाराणसी

**प्रो. सूरजभान सिंह**
आई–127, नारायणा विहार
नई दिल्ली

## पाठ्यक्रम निर्माण

| पाठ लेखक | इकाई संख्या | पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक |
|---|---|---|
| **प्रो. तेजस्वी कट्टीमनी**<br>मौलाना आजाद नेशनल उर्दू विश्वविद्यालय<br>हैदराबाद, आंध्र प्रदेश | 11 | **प्रो. विमल थोरात**<br>मानविकी विद्यापीठ<br>इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली |
| **प्रो. वी. कृष्णा**<br>हिन्दी विभाग, हैदराबाद<br>केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद | 12 | |
| **प्रो. चौथीराम यादव**<br>(सेवानिवृत्त) हिंदू विश्वविद्यालय<br>वाराणसी, उ.प्र. | 13 | |

**आवरण चित्रकार**
**सवी सावरकर**
नई दिल्ली

**सचिवालयी सहयोग**
**मिथिलेश प्रसाद**
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

## मुद्रण निर्माण

सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

फरवरी, 2014

*© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2014*

ISBN-978-81-266-6667-6

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी–166ए, भगवती विहार, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

मुद्रित–मैसर्स आकाशदीप प्रिंटर्स, 20 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

# खंड परिचय

'भारतीय चिंतन परंपराएँ और दलित साहित्य' पाठयक्रम का चौथा खंड 'संत साहित्य परंपरा' पर आधारित है। इस खंड में कुल तीन इकाइयाँ क्रमशः निम्नानुसार है–

**इकाई 11– कन्नड संत परंपरा**

**इकाई 12– तेलुगु संत परंपरा**

**इकाई 13– निर्गुण संत परंपरा**

प्रस्तुत खंड की प्रथम इकाई कन्नड संत परंपरा की है। कन्नड संत परंपरा जो मूलतः अपने अभिनिवेश में निर्गुण परंपरा का ही कन्नड भाषी प्रदेश में समृद्ध विचारदर्शन प्रवर्तीत हुई और कन्नड संतों के समतावादी दृष्टिकोण पर प्रकाश डालती है। बारहवीं शताब्दी में वीर शैव संप्रदाय द्वारा वचन साहित्य की निर्मिति ने कर्नाटक प्रदेश में सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। बसवेश्वर के नेतृत्व में 'वीर शैव पंथ' तथा 'अनुभव मण्डप' में नितदिन समाज में स्थित परंपरागत कुरीति–रूढ़ियों, अस्पृश्यता तथा दासत्व के विरोध हेतु मुक्तरूप से चर्चा की जाती थी। इससे मुक्ति का मार्ग तलाशा जाता था। शिवशरणं द्वारा समतावादी समाज निर्मिति के विचार का स्पष्ट रूप से प्रचार–प्रसार किया जाता था। संत साहित्य में अभिव्यक्त यह विचार सिद्धों की परंपरा को ही आगे बढ़ाने वाला परिवर्तनवादी विचार है। बसवेश्वर के 'अनुभव मण्डप' में एकत्रित होनेवाला समाज, सभी शरण एवं शरणियाँ निम्न जाति और निम्न वर्ग के ही थे। ये सभी प्रस्थापित ब्राह्मणवादियों द्वारा तिरस्कृत हाशिये पर पड़े लोग थे जिन्होंने पहली बार ज्ञान की परंपरा से जुड़ते हुए कविताएँ लिखी। बसवेश्वर, अल्लभप्रभु, अक्कमहादेवी, चेन्न बसवण्णा आदि वचनकारों ने भक्ति परंपरा को सामाजिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन का स्वरूप दे दिया। श्रम को महत्व देकर केवल धर्माचरण में अकर्मण्य जीवन व्यतित करने वालों का खंडन किया। सभी शरण स्त्री को पुरुष के समकक्ष मानते हैं, लिंग के आधार पर स्त्री की किसी प्रकार की योग्यता में अंतर नही करते। कन्नड के प्रमुख संतों में पुरंदरदास, कनकदास, विजयदास जैसे महत्वपूर्ण कवि विशेष उल्लेखनीय है। सर्वज्ञ कवि भी जन सामान्य में अपनी सहज, बोधगम्य और मार्मिक रचनाओं के कारण अत्यंत लोकप्रिय थे, जिन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ब्राह्मणवाद की बंदिशों से बहुजनों को मुक्त किया और संतों की श्रेणी में प्रवेश करने का मार्ग खोला।

प्रस्तुत खंड की इकाई बारह में तेलुगु संत साहित्य की विशेषताओं तथा प्रमुख तेलुगु संतों के विचारों को जानेंगे। तेलुगु के महान संत कवि 'वेमना' से संत साहित्य की सहज धारा प्रवाहित हुई है। तेलुगु में यह विशेष उल्लेखनीय तथ्य है कि अन्य क्षेत्रों की तुलना में सगुणधारा का उद्‌भव निर्गुणधारा के पहले हुआ है। तेलुगु में निर्गुणधारा ने आंदोलन का स्वरूप भी ग्रहण नहीं किया। संत वेमना जैसे श्रेष्ठ निर्गुणवादी संत ने तत्कालीन धार्मिक अंधविश्वासों, मिथ्याधारणाओं के साथ–साथ सामाजिक असमानताओं एवं असंगतियों का खुलकर विरोध किया। कबीर जैसी स्पष्टवादिता और अक्खड़पन वेमना में दिखाई देता है। कबीर जैसा ही समाज सुधार का भाव उनमें ओतप्रोत भरा था, सामाजिक कुरीतियों को वे आड़े हाथों लेते थे। तेलुगु के अन्य संतों में प्रमुख रूप

से पोतुलूरि वीर ब्रह्म, दूदेकुला सिद्धय्या, ईश्वरम्मा और सुंदरीमणि, रामदास है। सभी संतों के भक्तिकाव्य में धर्म के जनतांत्रिकरण, ह्रासोंन्मुख मूल्यों का खंडन, ऊँच–नीच के भेद का विरोध, स्त्री समता का दृष्टिकोण प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

प्रस्तुत खंड की इकाई तेरह में 'निर्गुण संत परंपरा' भारतीय भक्ति साहित्य में ब्राह्मणवादी परंपरा के विरोध में उठे प्रखर स्वर की अभिव्यक्ति को रेखांकित करती हैं। सन्त काव्य धारा का तथ्यात्मक मूल्यांकन करने के लिए हमें मुक्तिबोध के शब्दों में कहना होगा "शूद्रों ने पहली बार अपने संत पैदा किये।" निर्गुण संत काव्य धारा में अधिकतर संत निम्न मानी गई जातियों के हैं, यह सत्य तत्कालीन सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश पर जाति व्यवस्था की जकड़न तथा धर्म के खोखलेपन की वास्तविकता से हमें रू–ब–रू करता है। भक्ति के जड़मूल रूप, धार्मिक मिथ्या धारणा और सामन्तों, राजाओं के गुण–गान के स्थान पर संतों ने समाज परिवर्तन के लिए यह नया रास्ता क्यों अपनाया। इसे समझने के लिए प्रस्तुत इकाई में शामिल सामग्री, संतों के विचार, विद्रोही स्वर और समता के प्रति समर्पित भाव का अध्ययन करना जरूरी है। प्रस्तुत इकाई कबीर, रैदास, दादूदयाल, गुरुनानक, पलटू साहब, तुकाराम, नामदेव, चोखामेला, जनाबाई, ललदेह, सहजोबाई आदि निर्गुण संतों के क्रांतिकारी तेवर जो प्रमुखतः उन्होंने तत्कालीन संकीर्ण जातिवादी कर्मकांडी यथास्थितिवादी धर्म परंपरा के विरोध में अपनाया था, को रेखांकित करती है। ब्राह्मण श्रेष्ठता को चुनौती देनेवाली निर्गुण संत परंपरा बुद्ध, चार्वाक, लोकायतों और सिद्ध–नाथों की समतावादी, विज्ञानवादी विचार परंपरा का ही निर्वाह करते हुए जन की भाषा में लोकधर्मी परंपरा को प्रतिष्ठित करती हैं। इन सभी संतों की मूल प्रकृति जनतांत्रिक थी और उनके उसी प्रयास से संत परंपरा का यह जनआंदोलन देश के कोने–कोने तक फैल गया था। भक्ति–आंदोलन एक देशव्यापी आंदोलन बना जिसने संपूर्ण भारत को सांस्कृतिक सूत्र में बांधने का तथा सामाजिक स्तर में समता का विचार स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इस खंड का ध्यानपूर्वक अध्ययन कीजिए और निर्गुण संत परंपरा ने आगे के समय को भी किस प्रकार प्रभावित किया है इसे जानने, समझने का प्रयास कीजिए।

# इकाई 11 कन्नड की संत भक्ति परंपरा

## इकाई की रूपरेखा


11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 भक्ति साहित्य

11.3 कन्नड भक्ति साहित्य की परंपरा

11.4 वचन साहित्य

- 11.4.1 शरण साहित्य की पूर्वकालीन परिस्थिति
- 11.4.2 वचन साहित्य की विशेषताएँ
- 11.4.3 बसवेश्वर
- 11.4.4 अक्कमहादेवी

11.5 हरिदास साहित्य

- 11.5.1 पुरंदरदास
- 11.5.2 कनकदास
- 11.5.3 विजयदास

11.6 हरिहर का भक्ति साहित्य

11.7 सर्वज्ञ

- 11.7.1 वीरशैव पुराण
- 11.7.2 विरत महालिंग की भक्ति
- 11.7.3 चामरस
- 11.7.4 राघवांक
- 11.7.5 एक सौ एक विरक्त
- 11.7.6 शिवतत्व चिंतामणि
- 11.7.7 शिशुनार शरीक साहब

11.9 सारांश


## 11.0 उद्देश्य

कन्नड साहित्य के इतिहास में भक्ति साहित्य की अपनी एक श्रीमंत परंपरा है। बारहवीं शताब्दी के शिवभक्तों का वचन आंदोलन कन्नड-भक्ति-आंदोलन की पहली सीढ़ी है। वचन आंदोलन, दास साहित्य, हरिहर का भक्ति साहित्य, सर्वज्ञ की निर्गुण भक्ति, वीरेशैव पुराण, राघवांक की भक्ति, एक सौ एक किस्तों की भक्ति, निजगुण शिवयोगा की कैवलय पद्धति आदि भक्त कवियों का परिचय करना इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है। इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आपः

- कन्नड की भक्ति परंपरा को जान पायेंगे;
- वचन साहित्य का परिचय प्राप्त कर लेंगे;

- दास परंपरा से अवगत होंगे;
- भक्ति पंथ के धार्मिक, सामाजिक स्वरूप को समझ पायेंगे;
- वचन साहित्य के भक्ति-आंदोलन के प्रमुख लक्षणों से अवगत होंगे; और
- बसवेश्वर, अल्लम प्रभु, अक्क महादेवी आदि प्रमुख भक्त कवियों से परिचित होंगे।

## 11.1 प्रस्तावना

बारहवीं शताब्दी में शिवभक्तों के धार्मिक आंदोलन के कारण कर्नाटक में वचन साहित्य का प्रचार एवं प्रसार हुआ। बारहवीं शताब्दी के बाद हरिभक्तों का एक आंदोलन भी आरंभ हुआ कई हरिभक्त कवियों का आगमन तथा वाद विवाद भी खड़े हो गये थे। धीरे-धीरे सोलहवीं शताब्दी तक कन्नड में कीर्तन साहित्य का प्रवर्धमान हुआ। पूरे भारत में बारहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक साहित्य का मूल स्रोत भक्ति ही रही है। उत्तर भारत के संत, दक्षिण में आलवर, शिवशरण, हरिदास आदि भक्त कवियों ने हर-दृष्टि के विविध रूपों को अपनी भक्ति के आराध्य दैव मानकर साहित्य की रचना की है। हरिहर की आराधना मात्र इस भक्ति पंथ का उद्देश्य नहीं रहा। लौकिक जीवन को नीतियुक्त रूप से बिताना भी उनका प्रमुख उद्देश्य रहा। अन्य देश के शासकों से, स्थानीय धर्मों पर, सामाजिक अवस्थाओं पर हुए दुष्परिणाम तथा स्थानीय शहरों की दुर्नीति आदि के प्रभाव से समाज जर्जरित रहा। ऐसी स्थिति मे स्वधर्म को जागृत करने की आवश्यकता की ओर समाज का ध्यान गया। व्यक्ति की अपरिमित वैयक्तिक आशा-आकांक्षाओं को नियंत्रण में रखने की ओर भी चिंतनमनन होने लगे। और यह नियंत्रण बाहर का न होकर अपने आप का अंदरूनी नियंत्रण होना चाहिए - इस पर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा। समाज में स्थित छोटे-बड़े उच्च-नीच भावना को नकारकर समानता की स्थापना की और भी संतों ने गंभीरता से विचार किया। वेद उपनिषद् की मानवीय भावनाओं को अंधेरे में रखकर समाजद्रोही अंशों के प्रचार में अपने आप लगी रहने वाली विघटनकारी शक्तियों को विरोध करने की ओर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक एवं वैयक्तिक स्तर पर नीति की नींव को मजबूत करने की आवश्यकता पर सभी ज्ञानियों का ध्यान आकर्षित हुआ। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए केवल उपदेश देना काफी नहीं था बल्कि उपदेश को साकार बनाकर, जीकर दिखाने की आवश्यकता थी। दूसरों के लिए एक आदर्श भूमिका के रूप में किसी न किसी को खड़ा करने की ओर भी संतों ने ध्यान दिया। स्वयं इन भक्त कवियों ने ऐसी निस्पृह जिंदगी बिताकर समाज के लिए आदर्श बन गये। इसीलिए पूरे संतसाहित्य में हम देखते हैं कि वे कभी किसी युटोपिया की चर्चा न करके सरल सात्त्विक जीवन विधान का प्रतिपादन करते हैं।

बारहवीं शताब्दी के शिवशरणों ने प्रभावित होकर, भागवत धर्म से प्रेरित होकर 16वीं शताब्दी में 'दासकूट' की स्थापना करके माध्व तत्व प्रणाली के प्रचार प्रसार के लिए कुछ संतों ने पूरे कर्नाटक प्रदेश में यात्रा की। 'दासकूट' के संतों ने शास्त्रज्ञान को कम तथा भक्ति भाव की ओर ज्यादा ध्यान दिया। रोजमर्रा की जिंदगी को स्वयं उच्च नैतिक बनाने में हरिदासों ने जोर दिया। माध्व मत की तार्किक नींव इनकी विचारधारा के मूल में कार्यरत रही। मुलबागिल के 'श्री पादराज' (1404-1502) को दास परंपरा के आदि संतकवि माना जाता है। 'रंगविठल' काव्य नाम से श्रीपादराज ने भक्ति प्रधान भगवान नामावली की स्थापना की रचना है। गेय इनका प्रमुख गुण है। गोपीगीत, वेणुगीत, भ्रमरगीत इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

## 11.2 भक्ति साहित्य

बारहवीं शताब्दी में शिवशरणों का आगमन एक ऐतिहासिक घटना है। कर्नाटक के खुदूर बीदर जिले के बसवकल्याण में बसवेश्वर के नेतृत्व में एक मौन क्रांति की तैयारी हो रही थी। सत्य असत्य से, बतियाना और मौन से, शब्दों के अर्थ अनर्थ से, घर और समाज से, बहिरंग और अंतरंग से शिवशरण नित्य अनुसंधान करते थे। आपस की चर्चा, संवाद, वादविवाद के लिए उन्होंने 'अनुभव मंडप' नामक संस्था की स्थापना कर ली थी। जिसका अल्लमप्रभु अध्यक्ष थे। 11वीं सदी का यह वचन साहित्य-युग सच्चे अर्थों में 'स्वर्णयुग' कहलाता है। इस काल विशेष में कन्नड के कवि कवियित्रियों ने जो शिवशरण और शिवशरणियाँ कहलाते हैं; कविता की रचना सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आंदोलन के लिए की है। काव्यकर्म इनके लिए साधन मात्र था, न कि साध्य।

लगभग सैकड़ों शरण कवि-कवयित्रियों ने समकालीन काल संदर्भ में, दृष्टि और समष्टि हित को समान रूप से महत्व देते हुए वचन साहित्य की रचना की थी। आज भी लगभग सैकड़ों शिवशरण और पैंतीस से बढ़कर शिवशरणियों का वचन साहित्य उपलब्ध होना आश्चर्य का कारण बन सकता है। 'वचन' गद्य पद्य का सम्मिलित सरस काव्य प्रकार माना जा सकता है। इनके साहित्य को 'वचन साहित्य' के नाम से पहचाना गया है। इनके जीवन एवं लेखन, कथनी एवं करनी में सुंदर समन्वय स्थापित हुआ है। इसीलिए इनके काव्य में जीवन को देखने की प्रामाणिकता थी और काव्य दृष्टि स्वस्थ थी। इन्होंने जो भी अनुभव किया वही जीवन दर्शन बन गया, उनका जीवन दर्शन ही काव्यदर्शन बन गया, उनका जीवन दर्शन ही काव्य दर्शन था और वही उनकी जीवन शैली भी थी।

इस काल के लगभग सभी शरण निम्न जाति और निम्न वर्ग के थे। सब वृत्तियों के लोगों ने इस काव्य कर्म में भाग लिया था, जैसे मोची, ढोर, धोबी, नाई, कुम्हार, लोहार, लकड़ी बेचने वाला, रस्सी बनाने वाला, किसान, कुली, नट, चावल कूटने वाला और वेश्या तक जीवन के विविध स्तरों के लोगों ने इस सामाजिक भक्ति आंदोलन में भाग लिया था।

वचनकारों के बाद हरिहर, राघवांक नामक भक्त कवि प्रमुख हैं। बसवेश्वर की शिवभक्ति को इन्होंने आगे बढ़ायी तथा इसी देशी परंपरा में साहित्य की रचना की। हरिहर एवं राघवांक ने राजा महाराजाओं को कभी अपनी कविता की वस्तु, नहीं बनाई, उनके अनुसार केवल शिव ही कविता में वर्णित हो सकता है। हरिहर ने राजा को कभी भगवान का अवतार नहीं माना। हरिहर की भक्ति पर उनके पूर्ववर्ती दार्शनिक बसवेश्वर की सामाजिक नीति का स्पष्ट प्रभाव है। अलग अलग वृत्ति, जाति से संबद्ध, तिरस्कृत, हाशिये पर पड़े लोगों की जीवन गाथा एवं भक्ति के आधार पर हरिहर ने कविता लिखी। चाण्डाल जाति का सेवकर चेन्नय्या, कुली, अरिवालल्लाण्ड, धोबी तिरूकुरूपेण्तोण्ड, मल्लाह अतिभक्त, कुम्हार गुण्डच्चा, शिकारी कण्णप्पा, कृषिक इलियाण्ड कुडिमार, चरवाहा अनयनार आदि सामान्य लोगों की भक्ति पर हरिहर ने कविता लिखी जिसमें इन भक्तों की मुग्ध भक्ति से विदग्ध होकर स्वंय शिव भक्तों तक आकर उनका उद्धार कर देते हैं। हरिहर स्वयं एक श्रेष्ठ भक्त थे। हरिहर का शिव भक्तवत्सल तथा गुणग्राही है। चोलराजा के महल में परोसे गये मृयन्न को शिव खा नहीं सकता लेकिन चाण्डाल चेन्नय्या के घर में दिये गये चावल के मांड को पेट भर पीता है। इस तरह हरिहर ने अपने आराध्य दैव शिव को प्रजावत्सल बनाकर कैलाश से उतरवा कर उनको काम करने वाले कार्य कनिष्ठ लोगों के बीच में खड़ा कर दिया है।

माध्वाचार्य के नेतृत्व में पले माहवमत में दास्य भाव भक्ति की प्रधानता है। इस मत से प्रभावित संत कवियों को ''दासकूट' कहा जाता है। व्यासराय, श्री पादराय, कनकदास,

पुरंदरदास हरिदास परंपरा के प्रमुख संत कवि हैं। माध्वदर्शन के अनुसार 'सभी जीव जंतु परमात्मा के दास हैं।" दास परंपरा में भगवान का अस्तित्व एक सिद्धांत नहीं स्वयं एक जीवनानुभव है। इस अनुभव प्रक्रिया की शुरूआत और अंत दोनों में केवल भगवान मात्र है। व्यासराय एवं श्रीपादराज दोनों संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। संस्कृत एवं कन्नड दोनों भाषाओं में इन्होंने गीतों की रचना की है। कनकदास और पुरहरदास व्यासराय के शिष्य थे, हरिदास साहित्य के प्रचार प्रसार में इन दोनों का बड़ा योगदान रहा है। संस्कृत साहित्य में भक्ति साहित्य प्रमुख रूप से स्त्रोत्र साहित्य के रूप में विकसित हुआ था, लेकिन कन्नड में हरिदासों ने उसे गीतों के रूप में अभिव्यक्त किया।

इसी समय में 'वीरशैव पुराण' नाम से बारहवीं शताब्दी के बसवण्णा के व्यक्तित्व के आधार पर आंध्रप्रदेश के पाल्कुटि के सोमनाथ ने द्विपदि में 'बसव पुराण' लिखा। भीमकवि ने उसे भामिनाषट्पदि में कन्नड में रूपांतर किया। यहाँ कन्नड भक्ति साहित्य में 'पुराण परंपरा' की शुरुआत होती है।

इस तरह कन्नड साहित्य में भक्ति साहित्य के नाम से भक्ति साधना एवं साहित्य की रचना एक साथ विकसित हुई है।

## 11.3 कन्नड भक्ति साहित्य की परंपरा

जैसे पहले ही हमने चर्चा की है कि बारहवीं शताब्दी आसपास कन्नड भाषा में भक्ति साहित्य का उदय हुआ। बसवेश्वर, अल्लमप्रभु, अकमहादेवी, चेन्न बसवण्णा आदि वचनकारों नें इस भक्ति परंपरा को एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन का स्वरूप दे दिया। वचन साहित्य, दासकूट, राघवांक, सर्वज्ञ, व्यासराय, श्रीपादराज, कनकदास, पुरंहरदास विजयदास, प्रसन्नवेंकटदास, गोपालदास, हरिदास तिम्मण्ण, जगन्नाथदास, प्रणेशदास, हेल्वनकट्टे गिरियम्म, हरपनहल्ली भीमन्न, लक्ष्मीदेवम्म, सर्वज्ञ, तथा वीरशैव पुराण परंपरा के प्रमुख कवियों में भीमकवि, लक्कण्ण दण्डेश, सक्कणाचार्य, विरूपाक्ष पण्डित, विरत महालंग देव (गुरु बोधामृत), चामरस (प्रभुलिंग लीला), निजगुण शिवयोगी (कैवल्य पददति) सर्वभूषण शिवयोनी (कैवल्य कलय वल्लरी), बाललीला महंत शिवयोगी (कैवल्य दर्पण), मडिवालव्य, शिशुनाल शरीक, शंकरदास आदि संत साहित्यकारों के द्वारा कन्नड साहित्य में भक्ति साहित्य का विकास हुआ है।

बसवण्णा के नेतृत्व में वीरशैव धर्म की स्थापना तथा 'अनुभव मण्डप' द्वारा प्रतिदिन जीवन एवं साहित्य की चर्चा करना, समाज के निम्न स्तर के हर व्यवसाय से जुड़े हुए लोगों को यहाँ तक वेश्यावृत्ति वाली संकव्वे (सूत्रि संकवे) को अनुभव मण्डप में अपने जीवनानुभवों की चर्चा करने की आजादी देना वचन साहित्य की विशेषता थी। दासकूट नाम से प्रसिद्ध हरिदास साहित्य के प्रवर्तक भक्त एवं भगवान के संबंध को दास संबंध के रूप में मान लिया। वचन साहित्य की तरह दास साहित्यकारों ने भी संबंधित रूप से भक्ति साधना एवं साहित्य की रचना की। हरिदास का माध्यम गीत थे। व्यासराय को कर्नाटक संगीत का पितामह कहा जाता है। कृष्ण दास साहित्यकारों का आराध्य दैव है। दास परंपरा के संत साहित्य में पुरंदरास और कनकदास प्रमुख कवि हैं। पुरंदरदास की कविता में संगीतात्मकता का पुट है। पूरे कर्नाटक में आज भी पुरंहरदास गीत गाये जाते हैं। संत कनकदास की कविता में भक्ति के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह की भावना है।

सर्वज्ञ एक ऐसे संत थे जिनको किसी भी वाद से जोड़ा नहीं जाता। वे घुमक्कड़ संत थे। जहाँ जो मिला उसे खाकर, अपने अनुभवों के बल पर कविता की रचना की। कबीरदास के साथ सर्वज्ञ की तुलना की जाती है।

अनुभव मण्डप के पतन के बाद वचन साहित्य आंदोलन बिखर गया। शिवशरण कल्याण से दूर हो गये। लेकिन बसवेश्वर एवं उनके साथ साहित्यकारों से रचित साहित्य का अपना प्रभाव रहा। वचन साहित्य से प्रभावित होकर, उनके धार्मिक आंदोलन से स्फूर्ति पाकर उनकी कविता की वस्तु, शिल्प विधान, भाषा आदि से परवर्ती संत साहित्यकार प्रभावित रहे। हरिहर, राघवांक उनमें प्रमुख हैं। भीमकवि से लिखित 'बसवपुराण' वीरशैव साहित्य का पुनर्निर्माण का काम बसवपुराण से हुआ है। इस परंपरा में विप्त महालिंग देव उल्लेखनीय संत कवि हैं। गुरुबोधामृत, अनुभव इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। विरत महालिंग देव सर्वज्ञ से प्रभावित होने पर भी अपना एक अलग मार्ग अपना लिया। सर्वज्ञ की सामाजिक विडंबना को दूर रखकर कविता एवं भक्ति की शक्ति की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। चामरस से लिखित 'प्रभुलिंग लीला' एक उल्लेखनीय रचना है। हरिहर ने सामान्य मनुष्य को देव मानव बनने का चित्रण किया है तो चामरस ने स्वयं भगवान को अल्लम प्रभु के रूप में चित्रण करके उनकी लीलाओं का परिचय दिया है।

## 11.4 वचन साहित्य

बारहवीं सदी का वचन साहित्य कन्नड भक्ति साहित्य के इतिहास में एक मील का पत्थर हैं। इस काल विशेष में कन्नड के कवि-कवियित्रियों ने जो शिवशरण और शिवशरणियाँ कहलाते हैं कविता की रचना सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आंदोलन के निंदा की है। काव्यकर्म इनके लिए साधन मात्र था न कि साध्य। लगभग सैकड़ों शरणों ने समकालीन काल संदर्भ में व्याष्टि और समष्टि हित को समान रूप से महत्व देते हुए वचन साहित्य की रचना की थी। 'वचन' गद्य पद्य का सम्मिश्रण सरस काव्य प्रकार है। इनके साहित्य को 'वचन साहित्य' के नाम से पहचाना गया है।

इस काल के लगभग सभी शरण निम्न जाति और निम्न वर्ग के थे। जब वृत्तियों के लोगों ने इस काव्य कर्म में भाग था, जैसे मोची, ढोर, धोबी, हज्जाम, हरिजन, लकड़हारा, रस्सी बनाने वाला, किसान, नट, गायक, चावल कूटने वाला आदि।

### 11.4.1 शरण साहित्य की पूर्वकालीन परिस्थिति

**राजनीतिक** : लगभग ग्यारहवीं सदी में उत्तर भारत की तरह कर्नाटक में भी राजनीतिक अस्थिरता थी। कल्याण के चालुकम वंशीय राजाओं का पतन और कन्नेसूर्य राजा बिज्जर की उन पर विजय प्राप्त करना एक प्रमुख घटना है। इनका शासनकाल अत्यंत छोटा था। राजा बिज्जल के शासनकाल में कोई शांति, तृप्ति या स्थिरता नहीं थी। इनके शासन का महत्व बसव और शरणों के साहित्यिक धार्मिक और सामाजिक क्रांति के कारण से ही बढ़ गया था। बसवेशवर बिज्जाल के पास मंत्री थे और साथ ही वचन साहित्य का सृजन, धार्मिक परिवर्तन एवं सामाजिक परिवर्तन के लिए काम कर रहे थे।

**धार्मिक** : बसवेश्वर के पूर्वकालीन धार्मिक परिस्थिति अत्यंत ही हीनावस्था की थी। धर्म वर्ण और जाति आधार पर ऊँच नीच भावना थी। मानवीय भावनाओं को त्यागकर धर्म संकीर्ण बना था। कई प्रकार के धर्म, उपधर्म की गलियों में मनुष्य भटका हुआ था। कई प्रकार के अत्याचार, अन्याय और पशुबलि आदि धर्म की आड़ में चलती थी। जाति-उपजातियों में संघर्ष सामान्य बात हो गयी थी। वर्ण पद्धति को बसवेश्वर ने चुनौती दी और कहा कि उद्योगों के आधार पर आदमी को पहचाना जाना चाहिए-

लोहा गरमाया लोहार कहलाया,
कपड़ा धोया धोबी कहलाया,
सूत ताना जुलाह कहलाया,

वेदपाठ किया विप्र कहलाया,
जग में कान से कोई पैदा हुआ है?

**बसवेशवर**

समाज में मूर्तिपूजा की प्रधानता थी। धार्मिक जीवन में पुजारियों की प्रधानता थी। मंदिर शोषण और धनार्जन के केंद्र बन गये थे। देवदासी पद्धति प्रचलित थी। देवताओं को नृत्य चढ़ाने के स्थान पर पुजारी और उच्च जाति के लोगों को देवदासियाँ अपना शरीर चढ़ाना पड़ता था। इसलिए बसवेश्वर ने प्रतिपादन किया था-

"धनवान शिवमंदिर बनवाते हैं
गरीब मैं क्या कर सकता हूँ।
मेरे पैर ही मीनार, शरीर ही मंदिर
सिर ही सोने का मुकुट है

कूडल संगमदेव! नाशमय है जड़; अविनाश चेतन"

**बसवण्ण**

**सामाजिक और साहित्यिक स्थिति :** सामाजिक दृष्टि से बसवकालीन समाज अत्यंत हीनावस्था में था। नारी की अत्यंत दयनीय स्थिति थी। जाति व्यवस्था अपनी चरम सीमा पर थी। शिवशरणों ने स्त्री-पुरुष की समानता है की घोषणा कर दी और समग्र व्यक्तित्व विकास की सुविधाएँ उसे दी गई।

इन दिनों में संस्कृत प्रधान साहित्य प्रचलित था। कवि साहित्यकार सभी राजाश्रय में थे। केवल चंदू शैली में काव्य की रचना होती थी। उस समकालीन समाज का विश्वास था कि काव्यप्रतिमा ईश्वर की देन है। आश्रयदाता राजा के गुणगान में ही साहित्य संतृप्त था।

बारहवीं सदी के पूर्व साहित्य की विशेषताओं को इस प्रकार गिना जा सकता है।

1. परंपरावादी साहित्य
2. पंडितों की पांडित्यपूर्ण काव्य की रचना
3. रीतिबद्ध चंदूकाव्य की रचना
4. चर्वित चर्वण काव्य का विषय
5. संस्कृत भाषा का पूरा प्रभाव
6. केवल वस्तुनिष्ठ काव्य
7. पंडितों के लिए रचा गया साहित्य
8. राजाश्रित साहित्यकार
9. अवास्तविक कल्पना का आधार
10. आश्रयदाता राजाओं का बढ़ा चढ़ा कर वर्णन
11. जनविरोधी साहित्यमूल्य

बसवेश्वर ने साहित्य के स्वरूप को ही बदल डाला। वचन-साहित्य पुरानी कन्नड से मध्यकालीन कन्नड की ओर, चंदूरीति से देशीय रीति की ओर कठिनता से सरलता की

ओर भ्रमों से स्पष्टता की ओर अग्रसर होता हुआ दिखाई देता है। सामाजिक चेतना वचन साहित्य की अपनी विशिष्ट शक्ति है। वचन साहित्य के आंदोलन के केंद्र बिंदु के रूप में बसवेश्वर थे। वचन साहित्य की लोकोन्मुखी विषयवस्तु, सरल कन्नड, नई शैली और गद्यात्मक पद्य के अपने गुणों के कारण बहुत जल्दी सामान्य लोगों के बीच में लोकप्रिय हो गया।

## 11.4.2 वचन साहित्य की विशेषताएँ

वचन साहित्य एक चिंतनधारा है और इस चिंतनधारा को निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा स्पष्ट रूप से हम समझ सकते हैं।

**अनुभव मंडल की स्थापना** : साहित्यिक और सामाजिक क्रांति की कल्पनाओं को यथार्थ रूप में परिवर्तित करने के लिए बसवेश्वर ने शिवशरणों के सहयोग से अनुभव मंडप की स्थापना की थी। वर्ण- लिंग-वर्ग का भेदभाव न करते हुए सबको अनुभव मंडप में प्रवेश मिलता था। इसके सदस्य सभी को समानता की दृष्टि से देखते थे, परिश्रम करते थे, अपनी रोटी खुद कमाते थे। स्त्री पुरुष में भेदभाव न करते थे। मोची, ढोर, धोबी, केवट, हज्जाम, लकड़हारा, रस्सी बनाने वाला, किसान, नट, संगीतज्ञ, चावल कूटने वाली यहाँ तक वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियाँ भी अनुभव मंडप में भाग लेते थे। लगभग 400 शरण शरणियों ने एक स्थान में, एक ही समय में, एक ही उद्देश्य के लिए मिलकर आत्मशुद्धि और समाज शुद्धि के कार्य अनुभव मंडप द्वारा किया। वहाँ दार्शनिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक चर्चाऐं निरंतर होती थीं।

**जात-पात** : अपने युगीन जाति पद्धति की अनिष्टता एवं क्रूटता और इसे दलितों का सब प्रकार से शोषण का परिचय और अनुभव बसवेश्वर को बड़ी गहराई से था। वे मानते थे कि ज्ञान और मानवीयता पर विश्वास रखने वालों के लिए मनुष्य जाति एक ही है। अपने एक वचन में वे प्रतिपादित करते हैं कि-

ढोर बस्ति और शिवालय की जमीन एक है,
स्नान और पूजन का जल एक है,
स्वज्ञानी के लिए जाति एक है.....
हे कूडल संगमदेव।

(बसवेश्वर)

अधिकांश शिवशरण कवि निम्न जाति के थे, सर्वहारा वर्ग से आये हुए थे। बसवेश्वर ने उनमें स्वाभिमान भर दिया, उनकी प्रतिमा को खिलने का मुक्त वातावरण दिया। उन्होंने अभिजात वर्ग का विरोध किया है। बसवेश्वर निम्न जाति के सुशील शरणों को पास बिठाते हैं, सद्गुणों का आदर करते हैं। सद्गुणों की कोई जाति नहीं होती (उनके एक वचन से यह स्पष्ट है -

कुलहीन सुशील हो तो
उसके पड़ोस में रहना भला है।
सुपथ छोड़े बिना लिंग का सुमिरन कीजिए।
अनुभव मंडप में
मोची चेन्नय्या सुशील है, कूडल संगमदेभ।

(बसवेश्वर)

**श्रम संस्कृति :** भारतीय समाज का धार्मिक जीवन एक दृष्टि से अकर्मण्यता का ही जीवन है। किसी भी धार्मिक व्यक्ति को एक बार धर्म का ठेका मिल गया कि बस वह धर्मोपदेश में परोपजीवी बन जाता है। समाज के अन्य व्यक्तियों के परिश्रम पर पलना अपना अधिकार समझने लगते हैं। अकर्मण्य संत एवं महंतों के प्रति शरणों ने अपना असंतोष प्रकट किया है। शरण केवट चौडच्च अपने एक वचन में-

विरक्त को निमंत्रण देकर पूजा करने से,
श्वान को आसन पर बिठाकर पूजा करना बेहतर है,
क्योंकि ये अपने आपको-आणमल, मायामल, कार्मिकमलों
से मुक्त

बुरी आदतों में अनुरक्त होकर, सब कुछ मुझे चाहिए। कहते हुए, तमोगुणों से धन इकट्ठा करते हुए,

विरति स्थल श्रेष्ठ कहते हुए,
गेरूए वस्त्र धारण कर,
वे आडंबर में विचरते भ्रष्टों का
मुख कभी देखना चाहिए।

इसीलिए बसवेश्वर ने कहा था कि धर्माचरण के लिए शारीरिक श्रम अनिवार्य है। जो वृजिहीन है, आलसी है, उसे खाने का अधिकार नहीं है। कोई वृक्षि उच्च या नीच नहीं है, काम नहीं करना ही नीचता है।

'कायक' (परिश्रम) को ही 'कैलाश' घोषित करते हुए शारीरिक परिश्रम और उसके स्वावलंबी जीवन को अनिवार्य कर दिया, जिससे वृत्तिगौरव बढ़ गया।

**संग्रह प्रवृत्ति :** लोभ के कारण मनुष्य में आवश्यकता से अधिक संग्रह करने की प्रवृत्ति होती है। दूसरों के परिश्रम का फल लूटकर आदमी बहुत कुछ कमाना चाहता है।

बसवेश्वर ने संग्रह प्रवृत्ति का खंडन किया-
साड़ी का एक सूत
अन्न का एक दाना,
आज के लिए कल के लिए, होना चाहिए यदि कहा तो
आपकी सौगंध! आपके पुरातनों की सौगंध
आपके शरणों के बिना
मैं अन्य कुछ नहीं जानता! हे कूडल संगमदेव।

(बसवेश्वर)

**लिंग समानता :** भारत में नारी को भोग की वस्तु, पापों की पिटारी और साधना के मार्ग में बाधा डालने वाली और नरक के रास्ते मे जाने वाली के रूप में माना गया है। शिक्षा और सामाजिक मानमर्यादा से वह वंचित थी। नारी की इस दुर्गति और उपेक्षा की बसव ने कड़ी आलोचना की है और ऐसे समाज का उन्होंने विरोध किया है। बसवेश्वर ने स्त्री को सहधर्मिणी माना था, अनुभव मंडप में लगभग बत्तीस शिवशरणियों ने भाग लेकर शरणों

के साथ धार्मिक, सामाजिक और साहित्य का चिंतन किया। अल्लम प्रभु अपने एक वचन में कहते हैं कि-

कनक माया है, कनक माया नहीं,
नारी माया है, नारी माया नहीं,
मिट्टी माया है, मिट्टी माया नहीं,
मन की आशा ही माया है, हे! गुहेश्वर।

सही मायने में पुरुष के कंधे से कंधा लगाकर इस युग में स्त्री ने विकास किया है। दूरदृष्टि के अंधों की आग में जलती नारी ने पुकार-पुकार कर अपनी मुक्ति के लिए काव्य रचना की और अत्यंत ही आत्मीयता से बसवेश्वर ने इनकी सहायता की। बसवेश्वर और सभी शरणों ने पुरुष और स्त्रियों में योग्यता की दृष्टि से अंतर को नकार दिया। शारीरिक रचना मात्र से वे दोनों भिन्न है न कि प्रतिभा और योग्यता में।

**पुरोहितवाद का विरोध :** धर्म के नाम पर भोले-भाले और अनपढ़ लोगों का शोषण पुरोहित लोग मठ मंदिरों में करते थे। भक्त और भगवान के बीच में स्थापित इन पुरोहितों की शाही पद्धति का नाश बसवण्णा का उद्देश्य था। उन्होंने कहा कि साधना के मार्ग में स्वानुभूति एवं स्वपरिश्रम की आवश्यकता होती है। यज्ञ, पाठ, पूजा के संबंध में बसवेश्वर का एक वचन महत्वपूर्ण है, जो अत्यंत मार्मिकता से पुरोहितवाद का विद्रोहात्मक रूप से खंडन करता है:

"भूख लगी है मुझे, भोजन करो तुम,
ऐसा भी कोई कह सकता है?
जो कुछ भी करना है मन लगाकर करना।
कूडल संगमदेव कभी पसंद नहीं करेंगे।" **(बसवेश्वर)**

पुरोहितशाही के प्रति बसवेश्वर के मन में बड़ा क्रोध था। इसीलिए उन्होंने भक्तों से कहा कि तुम्हारा शरीर ही पवित्र मंदिर है। इटलिंग जो तुम्हारे शरीर पर है, उसकी पूजा, उपासना के लिए किसी पुजारी की आवश्यकता नहीं है। बसवेश्वर के अनुसार स्वानुभूति ही साधना है। मंदिरों को नकारते हुए बसवेश्वर का एक प्रसिद्ध वचन में कहा गया है कि-

धनवान शिवमंदिर बनाते हैं,
मैं गरीब, मैं मंदिर बना सकता हूँ?
मेरे पैर ही खंभे हैं, शरीर ही मंदिर
मस्तक स्वंय कनक मुकुट है
हे कूडल संगमदेव
जड़ नाशमय है, चेतन अविनाशी

**(बसवेश्वर)**

इस तरह हजारों सालों से पनपती मंदिर संस्कृति जैसी जड़ता को नकारते हुए भक्त और भगवान का अत्यंत आत्मीय संबंध 'लिंगपति शरण सति' तत्व का बसवेश्वर ने प्रतिपादन किया।

**बाह्याडंबरों का खंडन :** बसवयुगीन समाज वैदिक कर्मकांड और अंध श्रद्धाओं के जाल में फँसा हुआ था। सल्लेखन व्रत, सती पद्धति प्रचलित थी। सद्गति प्राप्त करने के लिए नरबलि दी जाती थी। माना जाता था कि भूत-प्रेत आदि की चेष्टाओं से बीमारियाँ

आती हैं, इसलिए भूत प्रेतों की आराधना की जाती थी। बसवेश्वर के एक प्रसिद्ध वचन में-

पत्थर का साँप देखकर क्षीराभिषेक करते हैं,
सजीव साँप देखकर पत्थर मारते हैं,
जंगमों को भगा देते हैं,
पत्थर के लिंग को भोग चढ़ाते हैं.....

**ग्रंथस्त ज्ञान का तिरस्कार :** बसवयुगीन शिक्षा मठ-मंदिर और अग्रहारों में चलती थी, वह भी उच्चवर्ण और वर्गवालों के लिए ही। दलितों को वहाँ प्रवेश नहीं था। संस्कृत में शिक्षा दी जाती थी। सामान्य लोग इस शिक्षा से वंचित थे। इसीलिए वेदागमशास्त्र स्मृति का बसवेश्वर ने विरोध किया। उन्होंने कहा कि वेदागमशास्त्र स्मृति आदि से भी स्वानुभूति श्रेष्ठ है। जिस साहित्य में स्वानुभव और लोकानुभव का महत्व होता है, वह समाज के और उसके बहुसंख्यक सामान्य लोगों के निकट होता है। बसवेश्वर अपने एक वचन में कहते हैं-

"शास्त्र को बड़ा मानूँ? कर्म की उपासना करता है।
वेद को बड़ा मानूँ? प्राणिवध का समर्थन करता है।
श्रुति को बड़ा मानूँ? व्यर्थ की खोज में लगी है'

**गुरु का महत्व :** आध्यात्मिक साधना के मार्ग में और जीवन की सफलता के लिए कई प्रसंगों में ज्ञानी गुरु की आवश्यकता होती है। बसवेश्वर के अनुसार गुरु ज्ञानी और परिश्रम से स्वावलंबी होना चाहिए।

"घड़ा बनाना है, तो पहले मिट्टी चाहिए,
गहना बनाना है, तो पहले सोना चाहिए,
शिवपथ जानना है, तो पहले गुरुपथ चाहिए,
कूडल संगमदेव को जानना है तो,
पहले शिवशरणों का सत्संग चाहिए।'

बसवेश्वर किसी एक को गुरु बनने का एक मानदंड हमारे सामने इस तरह रखते हैं। गुरु के लिए भी वे कायक और स्वावलंबन को अनिवार्य मानते हैं। कोई जन्म मात्र से गुरु नहीं बन सकता, बल्कि गुण और ज्ञान से वह गुरुत्व को पाता है।

**कथनी-करना :** कहना-करना बसवेश्वर के लिए भिन्न-भिन्न नहीं था। अपने समकालीन समाज में अपने दिये गये उपदेश के खिलाफ काम करने वाले लोगों को बसवेश्वर देख रहे थे। बसवेश्वर कहते हैं कि - कहना एक आचरण एक होने से हाथ का इटलिंग भी घरसर्प बन जाता है-

"बातों में सचेत और आचरण में अचेत होने से,
हाथ का इट लिंग भी विषैला साँप बनेगा।"

कहना सरल है लेकिन करना कठिन है। लेकिन कथनी-करनी एक होने से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व की श्रेष्ठता बढ़ती है। जागरुक बसवेश्वर यह भली-भाँति जानते थे कि कहनी मीठी विनयशील भी हो।

सदाचार, सत्यवाणी, अंतरंग-बहिरंग शुद्धिः
व्यक्ति-समाज का एक अंग है। प्रामाणिक, सदाचार

सद्विचारों से युक्त लोगों से समाज प्रामाणिक बन जाता है। बसवेश्वर ने व्यक्ति और समाज के लिए आंतरिक और बाह्य शुद्धि पर जोर दिया है। उन्होंने आंतरिक और बाह्यशुद्धि व्यक्ति और समाज के लिए अनिवार्य माना है। बाह्यशुद्धि आंतरिक शुद्धि का परिणाम है, जो हमारे आचारण में प्रकट होता है। इसीलिए शिवशरणों ने अपने को सत्कर्मों में लीन रखा। लोक और परलोक का अपूर्व समन्वय उनके आचरण में प्रतिपादित हुआ है। अपने एक वचन में बसवेश्वर अपनी आचारसंहिता को इस तरह स्पष्ट करते हैं-

"चोरी न भली, हत्या न भली, मिथ्या न भली
रोष भला नहीं, तिरस्कार भला नहीं,
आत्मस्तुति न भली, पर निंदा न भली
यही अंतरंग शुद्धि यही बहिरंग शुद्धि है,
यही कूडल संगमदेव को अपनाने का मार्ग है।"

**सत्यसंग** : सत्संग से ज्ञान की वृद्धि होती है। सत्संग के कारण मनुष्य आत्म-परीक्षण करने लगता है। सत्संग सत्यकार्यों का प्रेरणास्रोत है। बसवेश्वर अपने एक वचन में सत्संग में रहने कुत्संग त्यागने को कहते हैं। कहते हैं कि दुर्जनों का संग विषैले साँप के समान होता है-

"सज्जनों का सत्संग कीजिए
दुर्जनों से दूर रहिए।
साँप कोई भी हो, विष-विष ही है।
इनके संग में मत रहिए।
अंतरंग शुद्धिहीनों का संग
कालकूट विज है, कूडलसंगमदेव"

**दया** : दया बसवेश्वर के व्यक्तित्व की विशेषता है। ये मनुष्य ही नहीं, बल्कि प्राणी के प्रति भी दया दर्शाते हैं। बसवेश्वर के हृदय में समाज तथा उस समाज से उपेक्षितों के प्रति असीम दया थी। उसके एक वचन में इसे स्पष्ट किया गया है-

दया रहित धर्म कोई धर्म है?
सकल प्राणियों के प्रति दया चाहिए
दया ही धर्म का मूल है।
अन्यथा कूडल संगमदेव नहीं अपनायेंगे।

शिव शरणों के काव्य में, उनके प्रत्येक कार्यों में समाज के हर एक व्यक्ति और प्राणियों के प्रति यहीं दया लक्षित होती है।

**कायक** : मनुवादी कर्म सिद्धांत के उत्तर के रूप में बसवेश्वर ने कायक सिद्धांत की परिकल्पना की है। उनकी दृष्टि में कायक केवल मात्र वस्तुओं का उत्पादन या सेवामात्र नहीं है। उनके कायक सिद्धांत में तन और मन को समन्वय करने की अनंतशक्ति है। बसवेश्वर का कायक तत्व मनुष्य के आत्मगौरव की रक्षा करता है। कायक से काय ही स्वर्ग बनता है। कायक जीवी कैलास को ही एक बंजर भूमि समझने लगता है। बसवेश्वर ने कायक को चैतन्य का प्रतीक माना और कर्म को जड़ता का प्रतीक।

**दासोह :** दान की परिकल्पना कर्मवाद की उपज है। वह देने वाले को अहंकारी बनाता है और लेने वाले के आत्मगौरव का नाश करता है। शुद्ध मन के परिश्रम से धनार्जन करना, अधिक संग्रह नहीं करना एवं समाज के हित के लिए कुछ न कुछ देना। देते समय घमण्डी न होते हुए विनय भाव से देना, यही शरण संस्कृति का दासोह तत्व है। बसवधर्म के अनुसार शिवशरणों को दान नहीं देना चाहिए,न ही लेन-देन या ब्याज पर देना चाहिए। बसवेश्वर अपने एक वचन में-

अपना धन भक्तों को छोड़ औरों को
लेनदेन के लिए या ब्याज पर नहीं देना चाहिए
वापस मिला तो नेक, नहीं मिला तो दुगना ठीक,
वहाँ भी लोकार्पित यहाँ भी लोकार्पित
जन की वस्तु जन को अर्पित करने से
न लौट आने का सुख है, न डूब जाने का दुःख हैः

इसलिए शरणों के बिना औरों को लेन-देन या ब्याज पर धन नहीं देना चाहिए, कूडल संगमदेव (बसवेश्वर)

शिवशरणों की भक्ति में गुरुलिंग जंगम के प्रति भक्ति का समन्वय है। उनकी भक्ति गुरु (आत्मा), लिंग (परमात्मा) और जंगम (जन समूह) के दर्शन का माध्यम है। इस प्रकार विविध दासोह करना ही उनकी भक्ति की विशेषता है।

### 11.4.3 बसवेश्वर

बसव, बसवण्णा, बसवप्रभु आदि नामों से भी बसवेश्वर प्रसिद्ध है। बसवेश्वर के जीवन चरित्र पर कन्नड, तेलुगु, तमिल और संस्कृत में भी ग्रंथ लिखे गये हैं। बसवपुराण, बसवराज-विजय, मल बसवराज चरित्र, बसवशतक, बसव स्तोत्रद त्रिविधि, बसवस्तोत्रद वचन जैसे ग्रंथ इनकी जीवनी पर लिखे गये हैं।

इन्होंने 'षट्स्थल वचन ', 'शिखारत्न वचन' 'कालज्ञान वचन' और 'मंत्रोंगोत्य' नामक ग्रंथ लिखे हैं। इनके वचनों का अंतिम नाम 'कूडल संगमदेव' है।

बसवेश्वर का जन्म सन् 1131 को माना गया है। इनके पिता शैव भक्त मादरस और माता मादलांबिका थी। बीजापुर जिले के बागेवाडी (बसवन बागेवाडी) इनका जन्मस्थान है। कहा जाता है कि बचपन से ही वे विद्रोही स्वभाव के थे। जब उनके माँ बाप उपनयन संस्कार कराना चाहते थे, तब बसवेश्वर घर से भाग गये कृष्णा मलप्रभा नदियों के संगम पर स्थित तीर्थ क्षेत्र कूडल संगम में रहने लगे। जातवेद नामक तपस्वी से दीक्षा लेकर वही आवास करने लगे। इसी स्थान में बसवेश्वर ने अपने भविष्य के आदर्श और जीवन मार्ग का निर्माण किया। यही से उन्होंने निश्चय किया कि धार्मिक क्षेत्र के अंध विश्वासों को मिटाना है, शुद्ध भक्ति की स्थापना करनी है, सामाजिक जीवन की विषमतायें मिटानी हैं और व्यक्ति स्वातंत्र्य के विकास को पनपने देना है, एवं मानव मात्र के संबंधों को मधुर बनाना है। अपने जीवन में बसवेश्वर इन आदर्शों को यथार्थ में देखने में सफल हो सके।

कल्याण राजा बिज्जल के मंत्री बलदेव बसवेश्वर के मामा बलदेव ने उसे कल्याण ले जाकर अपनी बेटी गंगाबिका और बिज्जल की बहन नीलांबिका से विवाह कराया। बलदेव की मृत्यु के बाद बसवेश्वर बिज्जल का प्रधानमंत्री बन गया। राजकाज में भी उनकी भक्ति

साधना में कमी नहीं आयी। थोड़े ही समय में बड़ी भारी संख्या में भक्त इकट्ठे हो गये। बसवेश्वर ने 'अनुभव मंडप' की स्थापना की। इतिहास में लिखा गया है कि एक लाख छियानवे शिवशरण इकट्ठा हो गये थे। बसवेश्वर ने जात पाँत को मिटाने के लिए चमार हरलय्या के बेटे का विवाह ब्राह्मण मधुवय्या की बेटी से करवाया। परंपरावादियों ने इसका कड़ा विरोध किया और राजा बिज्जल से शिकायत की कि बसवेश्वर सदियों से चलती आयी वर्ण पद्धति को तोड़ रहे हैं। हरलय्या और मादय्या को हाथी तले कुचल दिया जाता है। 'अनुभव मंडप' भंग होता है। शिवशरण तितर बितर हो जाते हैं। स्वयं बसवेश्वर आराध्य दैव संगमनाथ आकर 1167 में संगम में लीन हो जाते हैं। उनका जीवनकाल केवल 36 साल माना जाता है। बसवेश्वर के वचनों की संख्या लगभग एक हजार मानी गयी है।

बसवेश्वर का कार्यक्षेत्र विशाल था। वे न केवल एक श्रेष्ठ भक्त थे बल्कि एक आध्यात्मिक नेता, धर्मस्थापक समाज सुधारक भी थे। अपने समय की सामाजिक बुराइयों का बड़े साहस के साथ खंडन ही नहीं किया बल्कि एक आदर्श समाज के नमूने को भी पेश किया। स्त्री समाज के प्रति जो तिरस्कार का भाव था, उसे हटाकर उन्हें पुरुषों के बराबर गौरव का स्थान दिलाया। अंत्यजों के लिए भी धर्म का द्वारा खोल दिया। तत्वज्ञान की अपेक्षा धर्माचार की महत्ता पर जोर दिया। धर्माचार में नीति, शील और सदाचार पर जोर दिया। धर्माचार में नीति, शील और सदाचार की आवश्यकता बताई। कर्म और ज्ञान के समन्वय के साथ साथ अनन्य भक्ति साधना का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार बसवेश्वर ने मानव मात्र की सर्वतोमुखी उन्नति और मुक्ति के लिए निरंतर परिश्रम किया। इन्हीं उच्च आदर्शों की सिद्धि के लिए इन्होंने वीरशैव मत की स्थापना की।

### 11.4.4 अक्कमहादेवी

अक्कमहादेवी का जन्म शिमोगा जिले के 'उडुमणि' नामक गाँव में हुआ था। निर्मलशेट्टी और सुमति अक्क के माता पिता थे। अक्कमहादेवी की प्रारंभिक शिक्षा उनकी जन्मभूमि उडुतडि के गुरुवादी मठ में हुई।

मरूसिद्ध शिवयोगी अक्कमहादेवी के दीक्षा गुरु थे। कन्नड तथा संस्कृत भाषा पर उन्होंने प्रभुत्व अर्जित किया था। गुरु-कृपा से ही अक्कमहादेवी को शिवत्व का बोध हुआ; लिंग, जंगम, पादोदक, प्रसाद, विभूति, रूद्राक्ष और मंत्र प्राप्त हुए तथा उनके सारे भव बंधन टूट गए। कन्नड तथा संस्कृत भाषा पर अक्कमहादेवी का प्रभुत्व था। अंतः साधना के परिणाम स्वंरूप धर्म, दर्शन और अध्यात्म के रहस्य खुलते चले गये और वे चेन्नमल्लिकार्जुन हो गई। उनकी मान्यता थी कि

> मैं पहनती, ओढ़ती,शृंगार करती हूँ, पूजनीय के लिए,
> कृति मेरी पूजनीय के लिए, दृष्टि मेरी पूजनीय के लिए;
> अंतरंग, बहिरंग लिंग के लिए
> अतः कर्म करने पर भी कर्म से अलिप्त हूँ मैं।
> चेन्न मल्लिकार्जुन में सामरस्य होने से
> दस में ग्यारह होने का मैं दावा कर सकती हूँ।

जीवन के चारों पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के बारे में उन्हें यह अनुभूति हुई, कि जिस तरह से काम शरीर की भाव और अर्थ उसकी तृप्ति का कारण हैं, उसी तरह से

मोक्ष (शिवाद्वैत) आत्मा की भूख और धर्म उसकी तृप्ति का साधन है। अपने पति को ठुकराकर अक्कमहादेवी ने श्रीशैल के चैन्न मल्लिकार्जुन को अपना पति मान लिया था। चेन्न मल्लिकार्जुन और अपने संबंध को लेकर अपने एक वचन में अक्क कहती है कि-

"बहिन सुन! सुन री बहन!
मैंने एक स्वप्न देखा -
चावल, सुपारी, पान, नारियल देखे,
घुंघराली जटा और मोतियों से दाँतवाला एक योगी देखा;
वह भिक्षा के लिए मेरे द्वारा पर आया;
'रूको, रूको; जाओ मत', कहते हुए मैंने पीछाकर
पकड़ लिया उसका हाथ!
चेन्नमल्लिकार्जुन देव के प्रगट होते ही,
हाय खुल गये मेरे नयन!"

अनुभव मंडप की गोष्ठियों में बसवेश्वर द्वारा संस्थापित वीरशैव धर्मानुयायी शरण नियमित रूप से सम्मिलित होते थे। वे जीव,जगत् और ईश्वर के संबंध में परस्पर चर्चा करते तथा अपनी अनुभूतियों को 'वचन' साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति देते थे।

अक्कमहादेवी के अनेक वचन इस सत्य के साक्षी हैं; कि वे अनुभव मंडप की गोष्ठियों में, शरण समाज में सम्मिलित हो, आध्यात्मिक चर्चाओं में भाग लेती थीं। अनुभव मंडप में उन्होंने षट्स्थल साधना, अटावरण, पंचाचार, इट लिंगोपासना, बसवधर्म की पूजा, उपासना एवं शरण-संस्कृति पर अपने मार्मिक विचार प्रकट किये हैं। उनके वचनों में अंग, लिंग, लिंगांग सामरस्य, शिवोम, जीव शिवैकय; गुरु, लिंग, जंगम-भक्ति तथा शिवोपासना का लिंगायत धर्मसम्मत विवेचन पाया जाता है, अतः अक्का के वचन, 'वचनशास्त्र' 'वचनवेद' के अंश ही नहीं, लिंगायत धर्म-संहिता के अधिकृत अंग हैं।

अक्का ने अनुभव मंडप के शरण-सत्संग की सराहना करते हुए कहा है, कि अनुभावी शरणों के दर्शन से, उनके संवाद से मुझे एक सर्वथा निराला सुख प्राप्त हुआ है। शरणों का सत्संग एक सुखद समागम है। शरणों के सत्संग से मेरे तन, मन, प्राण परिशुद्ध हुए और मैं शरणों की शोभा बन गई। शरणों की सत्संगति से मैं महाघन प्रसादी बन चेन्न मल्लिकार्जुन से समरस हो गई और मुझे चेन्नमल्लिकार्जुन की ही भाँति, भक्ति और ज्ञान से मोह हो गया। नर जन्म बार-बार नहीं मिलता, शिव-भक्ति बार-बार नहीं होती, शरणों का अनुभाव बार-बार नहीं मिलता, अतः मैं शरणों के अनुभाव में आत्मविभोर हो अपना जीवन सार्थक करूँगी।

जन्मतः वीरागिणी, शिवयोगिनी और भाव जीवी होने के कारण अक्का के मन में लोक संग्रह-कार्यों के प्रति विशेष रुचि नहीं थी, इसीलिए उनके वचनों में सामाजिक,आर्थिक, राजनीतिक विषयों के उल्लेख कम पाये जाते हैं। उनके जीवन में लौकिकता का प्रवेश ही नहीं था। वह एकांतप्रिय साधिका होने के कारण, अनुभव मंडप के शरण समाज को छोड़ वे श्री शैल चली गई।

अक्का की यह मान्यता थी, कि जीवन, मुक्ति का सोपान है, अतः विषम परिस्थितियों में भी राह खोजना चाहिए। निरंतर विषम परिस्थितियों का सामना करते-करते अक्का 'कदलीवन' पहुँची और अपने प्रिय को खोजते-खोजते उसके हृदय कमल में बस गई। इस तरह से शिवयोगिनी, अक्कमहादेवी अपने परम प्रिय जीवन साथी चेन्नमल्लिकार्जुन से एकरूप हो गयी। उनका सारा जीवन आध्यात्मिक शोध साधना था, जिसका समापन शिवैकय में हुआ।

## 11.5 हरिदास साहित्य

विजयनगर साम्राज्य के वैभव के दिनों में हरिदास परंपरा अपनी उन्नत स्थिति में थी। व्यासराय के नेतृत्व में 'व्यासकूट' की स्थापना की गयी थी। साम्राज्य का वैभव तथा पांडित्य एवं दास्य भावना का सुंदर समन्वय था- हरिदास साहित्य। व्यासकूट (व्यास मंच) के द्वारा विचारों, तत्वों, शास्त्रों का खण्डन-मण्डन होता था। दासकूट के हरिदासों ने संस्कृत के बदले में समाज में अपने आसपास प्रचलित कन्नड भाषा का उपयोग किया। कन्नड भाषा एवं संस्कृति के संदर्भ में हरिदास परंपरा 'वचन साहित्य' का विकसित रूप जैसा दिखाई देता है।

हरिदास परंपरा के मूल में माध्व सिद्धांत का जीवन सत्य है। माध्व सिद्धांत के अनुसार 'सकल चराचर जीव सब परमात्मा के दास हैं। हरिदास भक्तों का यह पारमार्थिक दास्य प्रत्यक्ष रूप से एक लौकिक स्वातंत्र्य को भी दिखाता है। हरिदासों का अटल विश्वास है कि जो हरी का अनुचर है उसको किसी का सेवक बनना नहीं होता। हरिदास भक्त की अपनी निजी नीति-संहिता होती है उसको कोई और संस्था के सामने सिर झुकाना नहीं होता। इनके लिए भगवान का अस्तित्व कोई सिद्धांत नहीं बल्कि एक निजी अनुभव है और इस निजी अनुभव का आदि एवं अनंत स्वयं वह भगवान ही होता है। व्यासराय और श्रीपादराय जी ने हरिदास परंपरा को आश्रय भी दिया और प्रोत्साहन भी। दोनों संत संस्कृत के बड़े विद्वान थे तथा दास संतों के साथ आने के बाद कन्नड में साहित्य की रचना की। कनकदास और पुरंदरदास दोनों व्यासराय के शिष्य थे और हरिदास साहित्य के विकास में इन दोनों का बहुत बड़ा योगदान है। संस्कृत में भक्ति साहित्य स्रोत साहित्य के रूप में आया, लेकिन कन्नड में हरिदासों के गीतों के रूप में भक्ति साहित्य का सृजन हुआ।

हरिदास साहित्य का प्रमुख माध्यम गीत है। इन्हीं गीतों के कारण कर्नाटक संगीत का प्रादुर्भाव हुआ। व्यासराय और पुरंदरदास को कर्नाटक संगीत के आदि पुरुष माना जाता है। इन हरिदासों के गीतों में साहित्य एवं संगीत का सुंदर समन्वय है। हरिदास गीत गाते हुए घर-घर जाकर, भीख माँगते थे। भीख माँगना उनका उद्देश्य नहीं था, गीत गाना और उसके माध्यम से साहित्य का तथा भक्ति का प्रचार करना हरिदासों का मुख्य उद्देश्य था। विष्णु तथा श्री कृष्ण इन हरिदासों की भक्ति के केंद्र बिंदु हैं।

### 11.5.1 पुरंदरदास (1485-1565)

पुरंदरदास व्यासराज एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। अपनी कंजूसी के लिए वे जाने जाते थे। एक समय ऐसा भी आया कि वे घरबार छोड़कर, धन दौलत को ठुकराकर हरिदास बन गये। कृष्ण भक्ति में ऐसे लीन हो गए कि अपना होश हवाश भी खो बैठे। दास साहित्य में कृष्ण की बाललीला का पुरंदरदास ने बहुत सुंदर वर्णन किया है। 'हरी नाचे, हमारे हरी नाचे', 'रंगा का अदभुत खेल', 'माँ तुम्हारे घर में किशन को देखा', 'जगदोद्धार" आदि रचनाओं में साहित्य एवं संगीत के संगम को देख सकते हैं।

पुरंदरदास का काव्य कृष्ण की बाललीलाओं का भंडार है। 'मत जाओ रंगा, दहलीज के पार' कविता में खेलने के लिए बाहर भागने वाले बालक कृष्ण को यशोदा रोकती है। कृष्ण उनसे बचकर भाग रहा है। कृष्ण एक बार बाहर जाता है तो पता नहीं क्या-क्या घटनाएँ घटेगी। पूरी कृष्ण कथा कविता में जीवित हो सकती है। पुरंदरदास की भक्ति में उनका आत्मविश्वास झलकता है। उनकी कविता में हमेशा एक आत्मचिंतन होता है। भगवान कृष्ण का नामस्मरण अनुसरण करते रहना ही अपना परमधर्म मानता है भक्त कवि। इतिहास प्रसिद्ध हंपी में पुरंदरदास नदी के किनारे बैठकर गीतों की रचना करते और गाते भी थे, 'पुरंदर मंडप' के रूप में आज वह जगह प्रसिद्ध है।

### 11.5.2 कनकदास

कनकदास व्यासराय के शिष्य थे। 'बाड' नामक छोटे से राज्य के अधिपति थे तथा विजयनगर के मांडलीक भी थे। किसी कारणवश लौकिक दुनिया से विमुख होकर अलौकिकता की ओर उनका मन झुक जाता है। बाड गाँव के पास ही कागिनेले का आदि केशव उनका आराध्यदैव थे। तिरूपति के वेंकटेश्वर के प्रति भक्त अगाध भक्ति रखते थे। राजकाज को छोड़कर, पुराने संस्कारों से अपने आपको दूर रखकर नये संस्कारों में प्रवेश करना जो हुआ अच्छा ही हुआ, हमारे श्रीधर की सेवा के लिए साधन, संपत्ति बन गयी। जैसे गीत में उन्होंने अपने नये जीवन का समर्थन किया है। कनकदास की भक्ति संपूर्ण अर्पण की है।

"तन तुम्हारा मन तुम्हारा
जीवन तुम्हारा स्वामी,
दिनरात आने वाले
सुख दुःख भी तुम्हारे, हे स्वामी"

गीत में उन्होंने भगवान के प्रति अपने अर्पण भाव को स्पष्ट किया है। सृष्टि और परमात्मा को कनकदास एक मानते हैं। द्वैत सिद्धांत पर तथा गुरु व्यासराय पर कनकदास का अपार विश्वास था। कनकदास गडरिया जाति के होने के कारण स्वयं व्यासराय के शिष्यों ने उनको बहुत सताया तथा उड़पी के श्रीकृष्ण मंदिर जाकर कृष्ण दर्शन करना चाहा लेकिन कनकदास के मित्र कृष्ण के द्वार हमेशा के लिए बंद ही रखे गये। कृष्ण मठ तथा कनकदास संबंधी वादविवाद आज भी चर्चित हैं। भगवान के प्रति दास्यभावना रखने वाले कनकदास स्वयं विद्रोही भी थे। 'मोहन तरंगिणी' श्रृंगार रस पूर्ण कविता है। उनकी 'रामधान्य चरिते' लंबी कविता के कन्नड साहित्य की पहली विद्रोही कविता मानी जाती है। उसमें एक छोटा सा धन राई और चावल के बीच का वाक्युद्ध दर्शाया गया है। राई गरीबों का संकेत है तो चावल धनवानों का प्रतिनिधित्व करता है। कविता में अंत में राई की विजय होती है। केवल इस एक कविता के कारण विद्रोही साहित्य में कनकदास को स्मरण किया जाता है।

### 11.5.3 विजयदास

विजयदास, प्रसन्न वेंकटदास के समकालीन भक्त कवि हैं। रायचूर के पास एक छोटे से कस्बे में श्रीनिवास, कूसम्म नामक दंपति के यहाँ इनका जन्म हुआ। 'हयवदन विठल' नाम से इन्होंने भक्ति साहित्य की रचना की। 'हमेशा मेरे हृदय में वास करो श्रीहरी, मैं तुम्हें छोड़नेवाला नहीं, इनका बहुत ही प्रसिद्ध छंद है जिसको इनके हर गीत में पाया जाता है।

विजयदास के समकालीन हरिदास भक्तों में - प्रसन्न वेंकटदास, गोपालदास, हरिदास तिम्मण्णा, प्राणेशदास, हेलवनकटटी गिरियम्मा, भागम्मा, हरपनह भीमव्वा, लक्ष्मीदेवम्मा आदि प्रमुख हैं।

## 11.6 हरिहर का भक्ति-साहित्य

वचन साहित्य की परंपरा में हरिहर का अपना विशेष स्थान है। बसवेश्वर युग और हरिहर में लगभग एक सौ बरस का फासला है। हरिहर के समय में बसवेश्वर तथा उनके समकालीन संतों को लेकर अनगिनत किंवदंतियाँ गढ़ी गयी थीं। बसवेश्वर के युगांतरकारी काम हरिहर युग तक आते-आते अपना महत्व खो बैठे थे। हरिहर एक शिवभक्त थे तथा शिवभक्तों के गीत गाने में ही उसको सुख मिलता था। मनुष्य के ऊपर, मरने वालों पर, भूख प्यास से तड़पने वालों पर गीत रचता ही जाता - यह हरिहर का जीवन मूल्य था।

लोक कल्याणकारी शिव एवं शिवभक्त पर वे सतत रूप से लिखते रहे। मनुष्य स्वार्थ से सामाजिक शोषण से हरिहर परिचित था इसलिए उन्होंने कहा कि परमात्मा के सामने-राजा और भिक्षुक दोनों समान हैं तथा राजा पर कविता नहीं लिखी जाये तो खेद नहीं होगा। परंतु भिक्षुक शिवभक्त है तो उस पर कविता जरूर लिखी जानी चाहिए। पहली बार कन्नड साहित्य के इतिहास में आम जनता पर कविता लिखने की हठधर्मिता पहली बार दिखाई देती है। अछूत चैन्नय्या के घर में खिचड़ी खानेवाला शिव, चोल महाराजा के महल मे पक्वान को भी ठुकरा देता है - यह हरिहर की भक्ति की पराकाष्ठा है।

## 11.7 सर्वज्ञ

कन्नड-भक्ति साहित्य के इतिहास में सर्वज्ञ शिष्ट कवि भी है और कबीरदास की तरह लोककवि भी है। सर्वज्ञ कन्नड लोक जीवन में इतने लोकप्रिय हैं कि लोग बातचीत में भी इनकी कविताओं का उल्लेख करते हैं। इस तरह सर्वज्ञ और आम जनता के अनुभव साकार हो गये हैं। बसवेश्वर के आदर्श सर्वज्ञ की मूल प्रेरणा है। सामाजिक मूल्यों के प्रतिपादन से ज्यादा सामाजिक कुरीतियों का खण्डन-सर्वज्ञ की विशेषता है। वैदिक परंपरा के कट्टर विरोधी होते हुए भी सर्वज्ञ समाज के हर एक जाति, व्यक्ति को अपने कठोर सामाजिक मानदण्ड के आधार पर देखता है।

सर्वज्ञ एक घुमक्कड़ संत थे। उनका कोई घरबार, मठ, संस्था नहीं थे। जहाँ जाते वहीं रुकते, जहाँ रुकते वहाँ अपने बारे में कुछ नहीं बोलते, एक कफनी के सिवाय उनके पास कुछ नहीं था। कन्नड साहित्य में पहली बार स्पष्ट वादिता के कारण काव्यगुण मुक्त कविता की रचना की गयी है। सर्वज्ञ की कविता में उद्देश्य होने पर उपदेश नहीं है। उदाहरण, उपमा, प्रतीक, बिंब सभी सामान्य लोगों के बीच से उठाये गये हैं। भाषा की दृष्टि से सर्वज्ञ कबीरदास के समान है, सर्वज्ञ ने भाषा को बंदी बनाकर उससे काम लिया है।

### 11.7.1 वीरशैव पुराण

बारहवीं शताब्दी में बसवेश्वर तथा उनके समकालीन वचनकारों के कारण 'वीरेशैव धर्म' को स्पष्ट रूप मिल गया था। कल्याण के अवसान के बाद शिवशरण तितर बितर हो गये लेकिन उनके द्वारा लिखा हुआ साहित्य इधर-उधर सुरक्षित था। शरणकालीन सामाजिक आंदोलन का प्रभाव भी परवर्ती समाज एवं साहित्यकारों पर देखा जा सकता है। शिवशरणों के साहित्य एवं जिंदगी से प्रेरित होकर हरिहर, राघवांक जैसे संत साहित्यकारों ने अपने साहित्य की रचना की। वीरशैव पुरणकालीन साहित्य का हम तीन भागों में विभाजन कर सकते हैं। पहले क्रमांक पर बसवेश्वर के आंदोलन तथा साहित्य से प्रभावित होकर लिखा गया वीरशैव साहित्य आता है। आंदोलन तथा साहित्य से प्रभावित होकर लिख गया वीरशैव साहित्य आता है। आंध्र प्रदेश के भक्तकवि पालकुटि द्वारा तेलुगु में लिखा हुआ 'बसव पुराण' का भीमकवि ने कन्नड में भामिनीषट्पदि में रूपांतर किया। यहाँ से वीरशैव पुराण परंपरा की शुरुआत होती है, यह दूसरा साहित्यिक सोपान है। तीसरे सोपान में-लक्कण, दण्डेश, जक्कणाचार्य द्वारा वीरशैव पुनरूजीवन काम शुरु हुआ और इसी भूमिका में वीरशैव साहित्य की रचना हुई है।

पालकुटिके सोमनाथ ने बसवेश्वर के जीवन एवं साहित्य के आधार पर तेलुगु में 'बसव पुराण' लिखा। भीमकवि (1369) ने तेलुगु से कन्नड में रूपांतर किया। बसवेश्वर की जीवनी ही यहाँ प्रधान नहीं है, बसवपूर्व, समकालीन शिवभक्तों की तथा तमिलनाडु के नायनारों की कहानी यहाँ प्रमुख है। बसवेश्वर की मूल कहानी के साथ-साथ कई उपकथाएँ इसमें आती हैं। कन्नड में 'बसवपुराण' गाया जाता था। गुब्बी के मल्लणाचार्य

(1561) बसवपुराण के वाचन तथा अर्थ विवरण में प्रसिद्ध थे। बसवपुराण वास्तव में 'पुराण' नहीं है, यह एक काव्य कृति है। विजयनगर की स्थापना के साथ साथ वीरशैव धर्म का कैसे पुरूजीवन हुआ तथा बसवेश्वर का प्रभाव कैसे जीवित है इसका स्पष्ट चित्रण लक्कण दंडेश से रचित 'शिवतत्व चिंतामणि' में मिलता है। वीरशैव भक्तों के लिए यह ग्रंथ एक 'वीरशैव विश्वकोश' की तरह प्रयोजनीय ग्रंथ है। शिवतत्व चिंतामणि पुराण रचना नहीं है। इसमें परतत्व स्वरूप, महालिंग, पच्चीस लीलाएँ, नारद का आगमन, बसवेश्वर का जन्म, तथा वीरशैव तत्व सिद्धांत का निरूपण मिलता है।

### 11.7.2 विरत महालिंग की भक्ति

विरत महालिंग देव की- 'गुरु बोधामृत' तथा 'अनुभव कंद' नामक दो रचनाएँ उपलब्ध हैं। गुरु बोधामृत त्रिपदी में लिखा हुआ है तथा 1045 पद इसमें शामिल हैं। त्रिपदी में होने पर भी बीच-बीच में संस्कृत श्लोकों का उपयोग किया गया है। अपनी इस कृति को कवि ने 'परमार्थ' कहा है। गुरु-शिष्य संवाद के रूप में 'गुरु बोधामृत' की रचना की गयी है। गहरा अध्ययन तथा चिंतन मनन के कारण से विरत महालिंग की रचनाएँ कविता तथा जीवनानुभव से भरी हुई हैं।

### 11.7.3 चामरस

चामरस की रचना 'प्रभुलिंग लीला' एक लोकप्रिय काव्य-रचना है। संगीतकार, गमकी आज भी 'लीला' को गाकर सुनाते हैं और इसे सुनने के लिए लोग उत्सुक हैं। विजयनगर के दूसरे प्रौढ़देवराय के समय में चामरस उसके आस्थान में थे। 'प्रभुलिंगलीला' अल्लम प्रभु पर आधारित है। अल्लम प्रभु के नाम से स्वयं भगवान लीलामय है काव्य में। भक्तों के उद्धार के लिए अल्लम के रूप में स्वयं प्रभु अनेक लीला करते हैं, जिसके कारण से चामरस का अल्लमप्रभु सामान्य न होकर अलौकिक मूर्ति है। चामरस के अनुसार अल्लम प्रभु सिद्ध पुरुष है, परम ज्ञानी है। जन्मजात सिद्ध अल्लम को एक दिव्य व्यक्तित्व के रूप में चित्रण करके चामरस ने ऐतिहासिक संत को लीला पुरुष तथा पौराणिक बनाया है। कई लीला पूर्ण घटनाओं, चमत्कार के कारण चामरस का प्रभु असाधारण शक्तिवाला है।

### 11.7.4 राघवांक

कवि राघवांक का 'सोमनाथ चरित्र' भी एक लीलामय व्यक्ति का चित्रण है। रचना के नायक 'आदय्या' सिद्धराम की तरह मुग्ध भक्त नहीं है। आदिगणनाथ सौराष्ट्र का एक धनवान व्यापारी है, जिन्हें आदय्या नाम से भी जाना जाता है। युवक आदय्या व्यापार के लिए पुलिगेरे आता है। पुलिगेरे में जैन शासक चंद्रादित्य राज्यभार कर रहा है। पुलिगेरे जैनमय है। आदय्या हूजेश्वर मंदिर में रहता है। जैन व्यापारी पारिससेटटी की बेटी पदमावती से मोहित होता है। एक महीने में सौराष्ट्र के सोमेश्वर को ले जाकर सुरहोन्ने बसदी में स्थापित करने की प्रतिज्ञा करता है। अंत में कई कष्ट झेलने और दुर्घटनाओं के बावजूद भी वह अपनी प्रतिज्ञा को पूरा कर लेता है।

राघवांक की दूसरी रचना 'सिद्धराम चरिते' सोन्नलिगे सिद्दरामेश्वर के जीवन पर आधारित है। दोनों रचनाएँ ऐतिहासिक घटनाओं एवं व्यक्तियों के आधार पर लिखी गयी हैं। दोनों में वीर एवं भक्तिरस का सम्मिश्रण है। राघवांक के लिए उनकी कविता एक पुण्य कथन है, वीरशैव तत्व प्रणाली की स्थापना के लिए उत्सुक कवि राघवांक ने कल्पना एवं समय के आधार पर इतिहास को पुनः लिखने की कोशिश की है।

### 11.7.5 एक सौ एक विरक्त

विजयनगर के नरेश प्रौढ देवराय के समकालीन भक्त कवि थे। वीरशैव गणवरों में प्रमथगण, रूद्रगण, काकगण, त्रिष्टी पुरातन गण, षोडशगण, तेरसगण चरित्र भी शामिल है। 'मोदीरूद्र' नामक कवि ने 'एक सौ एक विरक्त' नाम से एक स्वतंत्र कृति की रचना की है जिसमें एक सौ एक विरक्तों की विस्तृत चर्चा की गयी है। वीरशैव महात्मों की महिमा गाने वाले कवियों में एक विशिष्ट संप्रदाय का पालन करते हुए देखा जाता है। एक किवदंती के अनुसार कैलास का एक गणवर शाप अथवा किसी विशिष्ट कारण से धरती पर जन्म लेता है तथा शिव को प्रत्यक्ष पाने के लिए गणवर घोर तपस्या करते हैं तथा भक्त की भक्ति को देखते हुए शिव का प्रसन्न होकर दर्शन देना आदि प्रसंगों का वर्णन इनका रचनाओं में किया है। इस तरह वीरशैव धर्म की पुनःस्थापना में इन भक्त कवियों का विशेष योगदान रहा है।

### 11.7.6 शिवतत्व चिंतामणि

लक्कण दंडेश विजयनगर के राजा प्रौढ़देवराय के मंत्री थे। शिवभक्त तथा कवि थे। उनकी रचना 'शिवतत्व चिंतामणि' में एक सौ चार मूर्तियों का भक्तिभाव से चित्रण किया गया है। विजयनगर को कवि ने 'विजय कल्याण' नाम से चित्रित किया है। काव्य में विरक्त की वेशभूषा का सहज एवं स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

### 11.7.7 शिशुनाल शरीक साहब

धारवाड़ जिले के शिमांगा के पास शिशुनाल का शरीक अपनी भक्ति तथा तत्व पदों के लिए सुपरिचित है। जीवन की रीति नीति, सिद्धि साधना, अनुभव अभिव्यक्ति के संदर्भ में शिशुनाल शरीक अद्वितीय हैं। आम जनता की भाषा, लोगों के बीच से उपमा, अलंकार का चयन तथा रोजमर्रा जिंदगी के उदाहरण देकर शरीक साहब ने कठिन से कठिन जीवन सिद्धांत को, जीवन तत्व को अत्यंत सरल ढंग से प्रस्तुत किया है। सर्वज्ञ की तरह शरीक साहब के पद भी जनजीवन में ऐसे घुल-मिल गया है कि कभी-कभी मूल कवि शरीक को भी भूलकर लोग इनके पदों का उपयोग सहजता से रोजमर्रा के जीवन में करते रहे हैं। शरीक एक घुमक्कड़ संत थे। गोविंदभट्ट इनके गुरु थे। गोविंद भट्ट के मार्गदर्शन में योग साधना, हठयोग साधना करके शरीक ने अपने अनुभवों को जो कविता का रूप दिया वह कबीर की अभिव्यक्ति के समान है। कन्नड के अनुभावी साहित्य में शिशुनाल शरीक साहेब का एक विशेष स्थान है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक निर्धन मुसलमान परिवार में जन्मे मुहम्मद शरीक अपनी साधना के कारण सर्वपरिचित है। शरीक के बारे में प्रतीति यह है कि वे कवित में ह अपनी बात करते थे और वह कविता रहस्य, गूठार्थ से भरी रहती थीं। अपनी कविता को उन्होंने कभी प्रयत्नपूर्वक, पांडित्यपूर्ण नहीं लिखा, न ही गाया, जब मन को लगा खीच रचकर गाते थे, जिसे सुनकर कुछ विद्वान लोगों ने उसे लिपिबद्ध किया। वे जो गाते, वही कविता बनी और उनकी सभी कविताओं से विशेष अर्थवान है।

## 11.9 सारांश

भारतीय भक्ति साहित्य परंपरा में कन्नड़ भक्ति साहित्य का विशेष योगदान रहा है। बारहवीं शताब्दी में बसवेश्वर द्वारा स्थापित विरशैव पंथ और शिव भक्तों के वचन आन्दोलन ने समता का संदेश फैलाकर कर्नाटक तथा आस–पास के प्रदेशों में समन्वय का नया युग प्रारंभ किया था। अलौकिक शक्ति के अस्तित्व पर बसवेश्वर ने प्रश्न चिह्न लगाकर लौकिक जगत में सर्वसमभाव के समतावादी समाज निर्मित में उन्होंने बढ़–चढ़कर भूमिका निभाई। ब्राह्मणवाद के विरोध में सर्वप्रथम विद्रोह करने वाले बसवेश्वर जन

सामान्य में अतीशय लोकप्रिय हुए। छुआछूत, जाति भेदभाव को मिटाने में उनकी अग्रणी भूमिका रही। राजदरबार में दिवान के पद पर कार्यरत बसवेश्वर ने बहुजन के योग्य और लाभप्रद आर्थिक नीति निर्धारण के द्वारा समता बोध का प्रचार–प्रसार करके विघटनकारी शक्तियों का विरोध किया। स्त्री–पुरुष समानता को मात्र निर्मित में स्त्री वचनकारों का योगदान रहा है। बुद्ध की परंपरा, जो भी भिक्षुणी संघ द्वारा स्त्री को ज्ञान की परंपरा को जोड़ने का क्रांतिकारी कदम था को आगे बढ़ाते हुए बसवेश्वर ने 'अनुभव–मंडल' में स्त्रियों को बराबरी का सम्मान देकर और मंडल में प्रवेश किया। कन्नड़ के कवि कवयित्रियाँ शिवशरण और शिवशरणियाँ कहलाती है। सैंकड़ों कवयित्रियों की रचनाओं का सदंर्भ वचन साहित्य में प्राप्त होता है। वचन साहित्य के सृजन में लोकभाषाओं को प्राधान्य मिला, संस्कृत का निषेध किया गया। पोथी पुराण, अंधविश्वास, मिथ्या आडंबर और ब्राह्मणों के वर्चस्व को पूर्णरूपेण नकारा गया जिससे पुरातनपंथी वर्ग की ओर से बसवेश्वर तथा अन्य समतावादी भक्त कवियों का समय–समय पर विरोध किया गया। क्योंकि ब्राह्मणवादी धर्म, वर्ण, जाति के विरोध में बसवेश्वर ने सभी निम्न मानी गई जाति के संतों को अनुभव मंडल में प्रवेश देकर वर्ण–जातिवाद का विरोध किया था।

कन्नड के भक्त कवियों में अक्क महादेवी, का स्थान प्रमुख रूप से दृष्टव्य है। उत्तर भारत के संत कवियों में जो स्थान मीरा का है, वही स्था कन्नड भक्तों में अक्क महादेवी का है। उन्होंने श्रीशैल के चैन्न माल्लिकार्जुन को अपना पति मान लिया था। वह मीरा की तरह माल्लिकार्जुनमय हो चुकी थी। वे आध्यात्मिक चर्चाओं में भाग लेती थी। अनुभव मंडल की शरण–संस्कृति पर वे मार्मिक विचार प्रकट करती और शरण–सत्संग में हिस्सा लेती थी।

कन्नड के अन्य भक्त कवियों में पुरंदरदास, कनकदास, विजयदास जैसे महत्वपूर्ण भक्त कवि विशेष उल्लेखनीय है। कबीर के साथ जिनकी तुलना की जाती है वे सर्वज्ञ कवि भी जन सामान्य में अपनी सहज, बोधगम्य और मार्मिक रचनाओं के कारण अत्यंत लोकप्रिय थे, जिन्होंने ब्राह्मणवाद के बंदीवास से भक्ति को मुक्त करके सर्वजन–बहुजन तक भक्ति का प्रवाहमान किया।

## शब्दावली

**सोन्नलगे** : शोलापुर

**कल्याण** : बसव कल्याण

**दासोह** : लंगर; अन्न दासोह; सहपंक्ति भोजन

**दास्यभाव** : स्वयं को भगवान का दास मानना

**ढोर** : चमड़ी तैयार करने वाला

**विरक्त** : संन्यासी

**पारमार्थ** : अलौकिक

**वचन** : बसवेश्वर और उनके समकालीन साहित्यकारों ने लिखे पद

# इकाई 12 तेलुगु संत परंपरा

## इकाई की रूपरेखा


12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 तेलुगु की संत परंपरा

12.3 भारतीय दर्शन के अंतर्विरोध

12.4 तेलुगु के प्रमुख संत कवि

- 12.4.1 संत वेमना (1556-1650)
- 12.4.2 पोतुलूरि वीर ब्रह्मम् (1608-1693)
- 12.4.3 दूदेकुला सिद्धय्या (1665-1735)
- 12.4.4 ईश्वरम्मा और सुंदरीमणी
- 12.4.5 रामदास

12.5 तेलुगु संत साहित्य की विशेषताएँ

12.6 सारांश


## 12.0 उद्देश्य

तेलुगु संत साहित्य की इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- तेलुगु संत साहित्य की परंपरा को विस्तार से रेखांकित कर सकेंगे;
- तेलुगु के प्रमुख संतों के व्यक्तित्व तथा उनके कृतित्व से परिचित हो सकेंगे;
- तेलुगु संत कवियों की विशेषताएं बता सकेंगे; और
- तेलुगु संत साहित्य का विवेचन कर सकेंगे।

## 12.1 प्रस्तावना

तेलुगु साहित्य के इतिहास में संतों का स्थान अन्यतम है। तेलुगु में संत कवि समाज कवि के रूप में जाने जाते हैं। वैसे तेलुगु में कतिपय आलोचक इन्हें योगी अथवा तत्व कवि के नाम से भी पुकारते हैं। लेकिन संत कवियों को समाज कवि कहना ही उचित प्रतीत होता है। समाज कवि वे हैं जो मध्य युगीन ऐतिहासिक परिस्थितियों के बीच तद्युगीन सामाजिक-आर्थिक संबंधों की नींव पर खड़ी सामाजिक व्यवस्था में समय की अनेक सीमाओं के बावजूद विकासशील भूमिका निभाते हैं और प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वास्तव में तत्कालीन ऐतिहासिक स्थितियों में व्यवस्था के विरोध में खड़े होने वाला हर व्यक्ति सचेतन कवि है और हर एक का आंदोलन में योगदान है। पर, प्रस्तुत पाठ में हिन्दी में स्वीकृत शब्द संत का ही प्रयोग किया जा रहा है। जिससे विद्यार्थियों के लिए सुविधा होगी।

मध्ययुग में सामंतवादी व्यवस्था का वर्चस्व था। राजाओं और सामंतों की सत्ता थी। सामान्य जनता अथवा मजदूर या छोटे-छोटे पेशों का निर्वाह करने वाले लोग इनके शिकार हुआ करते थे। राजाओं और सामंतों की तानाशाही के विरुद्ध कारीगरों और स्वतंत्र विचार रखने

वाले व्यक्तियों ने भक्ति को आलंबन के रूप में स्वीकार किया है और सुधार की दृष्टि अपनाकर जनता को एकत्र करने की मुहिम छेड़ी है जो एक प्रकार से सामाजिक आंदोलन होने का ही अहसास दिलाता है। लेकिन यह सही है कि उनके पास अपने समय के समाज के अंतर्विरोधों तथा सामाजिक असमानताओं को पहचानने एवं विश्लेषित करने की वैज्ञानिक दृष्टि नहीं थी, पर वर्ण विरोधी चेतना तो जरूर थी। राजाओं की स्तुति करने के लिए भक्ति का उदय हुआ था। लेकिन इन कवियों ने ईश्वर की ओर मोड़ दिया और तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था में यह स्पष्ट करने की सफल कोशिश की है कि शासक वर्ग के लिए भले ही ऊँच-नीच का भेदभाव हो सकता है लेकिन ईश्वर के सामने सब बराबर हैं।

## 12.2 तेलुगु की संत परंपरा

'संत' शब्द का प्रयोग सबसें पहले संभवतः मराठी निर्गुणोपासक कवियों के लिये हुआ है। मराठी में 'विट्ठल' या 'वारकरी' संप्रदाय से जुड़े साधकों व कवियों को 'संत' कहा गया है संत नामदेव, संत ज्ञानेश्वर, संत तुकाराम, संत चोखामेळा, आदि सभी मराठी के ही हैं। निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य में 'संत' शब्द का प्रयोग हिन्दी में मराठी संतों के अनुकरण पर हुआ है। मराठी और पंजाबी में ही एक उत्कृष्ट संत परंपरा मिलती है। नाथ पंथ के समानांतर मराठी में निर्गुणोपासक संप्रदाय प्रचलित था, जो 'महानुभाव संप्रदाय' के नाम से जाना जाता था। चक्रधर नाम के एक संत इस संप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं जिनका समय तेरहवीं सदी का मध्य और उत्तरार्द्ध माना गया है। लेकिन चक्रधर से पहले महाराज 'सोमेश्वर' (1127 ई.) का नाम भी उल्लेखनीय है जिनके लेखन में संत संप्रदाय के बीच बराबर मौजूदा हैं।

तेलुगु में संत परंपरा और संत साहित्य बहुत की विस्तृत है और उसकी सामाजिक जड़ें बहुत गहरी हैं। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में हा 'विद्यारण्य' (1269-1286) नामक एक महान संत हुए। विद्यारण्युलु के बाद 'श्रीपाद वल्लभ' का नाम भी उल्लेखनीय है जिनका समय चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है। वास्तव में तेलुगु में संत साहित्य की सहज धारा 'वेमना' के आगमन से ही प्रवाहित हुई है। तेलुगु की यह विशेषता है कि तेलुगु में सगुणधारा के बाद निर्गुणधारा का विकास हुआ है जबकि हिन्दी में निर्गुणधारा के बाद सगुणधारा प्रवाहित हुई। जिस प्रकार हिन्दी में कबीर से निर्गुण प्रवृत्तियाँ प्रतिष्ठित होती हैं। लेकिन हिन्दी और तेलुगु की संत परंपरा में अंतर यह है कि हिन्दी में संत परंपरा एक आंदोलन का रूप ग्रहण करती है तो तेलुगु में वह स्थिति नहीं है। वैसे तो तेलुगु में दर्जनों संत कवि हुए हैं, उन सबको प्रस्तुत पाठ में समेटना संभव नहीं है। अतः कुछ प्रमुख संत कवियों की चर्चा की जा रही है।

## 12.3 भारतीय दर्शन के अंतर्विरोध

प्रसिद्ध इतिहासकार डी.डी. कोशाम्बी ने एक जगह लिखा है कि आधुनिक युग में उच्च वर्ग की संस्कृति में दिखाई देने वाले अंतर्विरोधों के कारण हमें इतिहास में खोजना होगा। भारतीय संस्कृति की विशेषता के बारे में हमेशा इस बात का उल्लेख होता है कि समन्वयवादी दृष्टिकोण भारत की विशिष्टता है और वह स्वदेशी-विदेशी अथवा पुराने-नये दार्शनिक व सांस्कृतिक विषयों तथा चिंतन परंपराओं को अपनाना बड़ी उदारता समझा जाता है। तार्किकता की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता है। ऐसा लगता है कि दर्शन के अंतर्विरोधों में न जाकर बहुत ही सरलता के साथ काम लिया जाता है। वास्तव में आज

भी यही स्थिति है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक दृष्टि का बड़ा ही विकास हुआ है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के तहत हर चीज को परखा जाता है। फिर भी समाज में अनेक अंतर्विरोध पाये जाते हैं तो सदियों पुराने के अंतर्विरोधों के बारे में क्या कहा जाए। इस विरोधात्मक तात्विक मिलन ने ही चिंतन और आचरण के बीच के अंतर्विरोध का समर्थन करने का आधार प्रदान किया है। मूर्तिपूजा का विरोध करने वाले भी विशेष परिस्थितियों में मूर्तियों एवं मेलों में शामिल होते हैं। एक धर्म विशेष के पूजा-पाठ का विरोध करने वाले दूसरे धर्म विशेष का पूजा-पाठ करते दिखाई देते हैं। इस प्रकार की अनेकानेक विरोधी तत्वों को इतिहास में देखा जा सकता है। भौतिक जीवन पर बल देने वाले बौद्ध दर्शन ने, भाववाद का आलम्बन बन एक धर्म का रूप धारण किया है भौतिक क्रियाओं के रूप में प्रारम्भ हुए माया एवं तंग मुक्ति के सोपान बने हुए हैं। कर्मकाण्ड से संबंधित निरीश्वर मीमांसा दर्शन अपना ही विरोध करने वाले अद्वैत और सत्ता वर्ग के अनुकूल में बदल कर ब्राह्मणवादी संस्कृति के रूप में विकसित हुआ है। सांख्यिकी ने भी भाववादी विचारों से समझौता कर लिया है। वैदिक कर्मकाण्डों का विरोध करने हुए वैदिक कर्मकाण्डों से संबंधित उपमान, प्रतीकों का प्रयोग करना आम बात हो गयी है। तात्पर्य यह है कि कतिपय ऐतिहासिक परिस्थितियों में उत्पन्न सांस्कृतिक एवं धार्मिक विश्वास एक दूसरे से पृथक होने पर भी आपस में मिल जाते हैं। इसलिए भारत के दार्शनिक विचार और क्लिष्ट होते गये। नये का स्वागत करने हुए पुराने अनेक विचार व विश्वास हमारे आधुनिक समाज को आज भी प्रभावित करने की स्थिति में हैं। सारांशतः दर्शन और जीवन में कोई मेल नहीं है। हर अच्छे व बुरे काम के समर्थन में हमारे पास तर्क हैं।

## 12.4 तेलुगु के प्रमुख संत कवि

वैसे तो तेलुगु में दर्जनों संत कवि हुए हैं। उन सबका देना प्रस्तुत पाठ में संभव नहीं है। अतः कतिपय प्रमुख संतों का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

### 12.4.1 संत वेमना (1556-1650)

तेलुगु साहित्य का स्मरण करते ही वेमना और उनके पद अनायास ही याद आते हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि संत वेमना के पद इतने लोकप्रिय हैं कि ऐसा कोई तेलुगु व्यक्ति नहीं मिलता जो वेमना का एक पद भी नहीं जानता हो। सचमुच वेमना तेलुगु के कबीर हैं। अंतर इतना है कि हिन्दी साहित्य में सगुण धारा से पहले कबीर और उनकी निर्गुण धारा प्रचलित हुई तो तेलुगु साहित्य में सगुण धारा के उपरांत वेमना जैसे निर्गुण धारा के समकक्ष तेलुगु साहित्य में कोई विशिष्ट धारा का प्रचलन नहीं हुआ है। परंतु निर्गुण प्रवृत्तियों को प्रचलित करने वाले संत अवश्य हुए हैं। वेमना इनमें श्रेष्ठ ठहरते हैं जो तत्कालीन धार्मिक अंधविश्वासों, मिथ्याधारणाओं के साथ-साथ सामाजिक असमानताओं एवं असंगतियों का खुलकर विरोध करते हुए अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। कबीर में जो स्पष्टवादिता और अक्खड़पन दिखाई देता है वहीं स्पष्टवादिता और अक्खड़पन वेमना में भी वर्तमान है। दूसरे शब्दों में वेमना कबीर जैसे ही तेलुगु प्रांत में एक महान संत, समाज सुधारक और युग पुरुष थे।

विद्वानों के मतानुसार वेमना का जन्म सत्रहवीं सदी में गुंटूर जिले के कोंडवीडु नाम के गाँव में एक रेड्डी वंश में हुआ था। बडे खानदान में जन्म लेने के कारण वे स्वाभाव से ही अक्खड़ एवं स्वेच्छाचारी थे। परिणामतः वे वेश्यागामी बन गये। कहा जाता है कि वेश्या को संतुष्ट करने के लिए उन्होंने स्वर्ण-योग सीखा और जैसे ही स्वर्ण योग की उपलब्धि हुई, वे योगी बन गये।

वेमना और वेमना के जीवन के संबंध में कई दंत-कथाएँ प्रचलित हैं। परंतु यह सच है कि वे अपनी अक्खड़पन और प्रखर प्रतिभा के कारण ही धार्मिक एवं सामाजिक विकृतियों पर प्रहार करते हैं और जाति, धर्म, प्रांत का भेदभाव न रखते हुए लोक-कल्याण की कामना करते हैं। उनकी जाति मानव जाति है और धर्म मानव धर्म।

वेमना एक महान मानवतावादी थे। वे धर्म के नाम पर, नस्ल के नाम पर, अर्थ के नाम पर और सामाजिक आचार-व्यवहारों के नाम पर समाज में किये जा रहे अन्यायों और अनर्थों का खंडन करते हैं। उनका एक-एक पद वास्तव में आज भी हमारे लिये प्रासंगिक-सा लगता है।

यदि राजा नीच होता है तो वह महान पुरुषों का आदर नहीं करता है और अपने स्वार्थ-संकुचित प्रयोजनों के लिये जनता पर दमन-चक्र चलाता है। ऐसे राजा के प्रति जनता का द्वेष और घृणा प्रकट होना स्वाभाविक है। ऐसे राजाओं के प्रति वेमना कहते हैं :

"अल्पबुद्धि वानिकि अधिकार मिच्चिन
दोड्डा वारि नेल्ल तोलग गोट्टु
चेप्पु दिन्न कुक्क चेरकु तीपेरुगुना
विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा!"

अल्प बुद्धि याने नीच को सत्ता सौंपी जाय तो वह सत्पुरुषों को बाहर निकाल देगा। चप्पल खाने वाला कुत्ता गन्ने का स्वाद क्या जाने। तात्पर्य यह है कि नीच नीचों का ही आश्रयदाता बनता है न कि सत्पुरुषों का।

यह लोकविदित है कि साँप काटने से पहले अपने फन को पार्श्व में लेता है। राजाओं की कर्कशता और अमानवीयता का वर्णन करते समय इस उक्ति का वेमना ने विशेष प्रयोग किया है। जैसे :

"पट्ट नेरचु पामु पडग ओरग जेयु
चेरप जूचुवाडु चेलिमि जेसु
चंप दलचु राजु चनुविच्चु चुंडुरा
विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा!"

अर्थात् काटने से पहले साँप अपने फन को पार्श्व में लेकर यह विश्वास दिलाता है कि वह अब नहीं काटेगा। जो दूसरों को बिगाड़ना चाहता है वह स्नेह का अभिनय करता है। इसी प्रकार राजा जो जनता की हत्या करना चाहता है। वह हत्या करने से पहले बहुत प्यारा जताता है। इसका मतलब है कि छल-कपटी व्यक्ति अपनी स्वार्थ बुद्धि को छिपाने के लिए भ्रम फैलाता है और विश्वासघात करता है।

वेमना स्वस्थ मूल्यों की स्थापना का उपदेश देते हैं। स्वस्थ मूल्यों से ही स्वस्थ समाज संभव है। क्योंकि मनुष्य के नैतिक जीवन ही समाज के लिए कल्याणप्रद है। मनुष्य अपने कर्मों के लिए स्वयं कर्ता है। सारे बंधनों को तोड़ने वाला भी मनुष्य ही है। निराडंबर जीवन ही आदमी की हैसियत को बढ़ाता है। इस संबंध में वेमना का कहना है कि:

"अल्पुडेपुडु पलुकु आडंबरमुगानु
सज्जनुंडु पलुकु चल्लगानु
कंचु मोगिनट्लु कनकं बु मोगुना .
विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा !"

अर्थात् अल्पों की वाणी सदा आडंबरपूर्ण होती है। सत्पुरुषों की वाणी शांतिदायिनी होती

है। क्या कनक की ध्वनि काँसे के समान होती है? सारांश यह है कि स्पष्टता में सत्य का होना सत्पुरुषों का परम कर्तव्य होता है।

वास्तव में वेमना दर्शक थे। उन्होंने समाज को हर कोण से नापने का सफल प्रयास किया है। धर्म के संबंध में उन्होंने जो बातें कही हैं, श्लाघनीय ही नहीं बल्कि आचरणात्मक भी हैं। उनके अनुसार पत्थर की पूजा करना और उसी पत्थर को भगवान शिव समझना मूर्खता है। वे कहते हैं किः

"कोंडरालु तेच्चि के रिक गटिट्न
गल्लालोन तिरिगिर कुलका नेल
पाटारानी शिबुडु प्राणियंदुंडंग
विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा! "

अर्थात् पत्थर फोड़कर मंदिर बनाते हैं। उसी पत्थर में भगवान शिव की खोज करते हैं। यह मूर्खता है। मनुष्यों के भीतर जो मानवता के रूप में सदा जीवित है, वही भगवान शिव है, उसकी पूजा करो। इसका तात्पर्य यह है कि प्राणहीन पत्थरों की पूजा करना व्यर्थ है। उसकी जगह आस-पास की दुनिया को परखना, समझना और मानवता की खोज करना श्रेयस्कर है। मानव-सेवा ही माधव-सेवा है।

वेमना की दृष्टि में सभी धर्म समान हैं। चाहे वह हिन्दू धर्म हो या मुसलमान धर्म। उनमें अपने धर्म और पराये धर्म का भेदभाव नहीं है। उनका निम्न-पद ही इसका प्रमाण हैः

"मक्का जननेला मगुड तारा नेल
येकमैना कर्ता इनदुलेडो
अन्निट परिपूर्ण, डल्ला मुहम्मद
विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा! "

अर्थात् जो मक्का की यात्रा करके आते हैं, उनका आदर होता है। वहाँ (मक्का) रहने वाला सर्वत्र व्याप्त है। और उनके दर्शन की प्राप्ति के लिए मक्का या कहीं और जाना अज्ञान है। इस प्रकार वेमना हिन्दू और मुसलमानों में कोई भेदभाव न रखकर मन से पवित्र रहने का उपदेश देते हैं।

जो रीति-रिवाजों का अंधानुकरण करते हैं, वेमना उनके प्रति तीव्र असहमति व्यक्त करते हैं। रीति-रिवाजों के अंधानुकरण के बजाय उनके महत्व और सार्थकता को समझने पर बल देते हैंः

"आत्मशुद्धि लेनि आचार मदियेल
भाण्डशुद्धि लेनि पाकमेल
चित्तशुद्धि लेनि शिव पूज लेलरा
विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा! "

अर्थात् आचारों में आत्मशुद्धि की आवश्यकता है और साफ बर्तनों में ही भोजन पकाना चाहिए। शिव पूजा के लिए मन की पवित्रता होनी चाहिए। यानि भक्ति के लिए ही नहीं प्रत्येक वस्तु के लिए आत्मा से पवित्र होना नितांत आवश्यक है।

वेमना एक समाजसुधारक के रूप में समाज की कुरीतियों को आड़े हाथों लेते हैं। वे वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रबल विरोधी थे। जो अपने को उच्चवर्ण का समझ कर दूसरों की निंदा करते हैं, उनके प्रति वे विद्रोही हो उठते हैं। तथाः

"मालवानि नेल मरि मरि निंदिंपगा
वोडल रक्त-मांस मोकटि गादे
वानि लोन मेलगु वानि कुलंबेदी?
विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा!"

यहाँ पर वेमना तर्कबद्ध हो कहते हैं कि हरिजन की बार-बार निंदा क्यों करते हो। दोनों के रक्त-मांस एक से ही तो हैं। उसके भीतर रहने वाले परमतत्व का कौन-सा कुल है। अर्थात् मनुष्य का कुल नहीं, गुण को देखना चाहिए। और घोषित करते हैं कि मनुष्य एक हैं।

इस प्रकार वेमना जन जीवन से जुड़े हुए मुहावरों, एवं सूक्तियों का भरपूर प्रयोग करते हुए, बोलचाल की भाषा में मानवता के उच्च आदर्शों का उपदेश देते हैं।

### 12.4.2 पोतुलूरि वीर ब्रह्म (1608-1693)

वीर ब्रह्म के तत्व (आध्यात्मिकता प्रधान पद) इतने लोकप्रिय हैं कि हर पुटपाथ पर इनके तत्व उपलब्ध होते हैं। वीर ब्रह्म के तत्वों को रेलगाड़ियों में भिखारियों के मुँह से सुन जाते हैं। पढ़े-लिखे लोगों के पास तो इन तत्वों को जानने-समझने की फुर्सत तो नहीं है लेकिन आम जनता की जुबान पर वीर ब्रह्म के त्व जिंदा हैं। विशेष कर ग्रामीण प्रांतों, बाजारों और नुक्कड़ों पर उनके तत्व गाये जाते हैं। कहा जाता है कि वीर ब्रह्म योग-शक्तियों के साथ पैदा हुए थे। 'काल ज्ञान' बताने वाले योगियों में वीर ब्रह्म शीर्ष स्थान पर हैं। वीर ब्रह्म का जीवन अद्भुत घटनाओं से पूर्ण हैं। तेलुगु में एक मुहावरा ही चल पड़ा है कि वेमना जैसा कोई संत नहीं है, वीर ब्रह्म जैसे कोई गुरु नहीं है और सिद्धय्या जैसा कोई शिष्य नहीं है।

वीर ब्रह्म के समय के बारे में कोई एक स्पष्ट धारणा नहीं है। कहा जाता है कि परिपूर्णाचार्य और प्रकृताम्बा उनके माता-पिता थे। लेकिन नंदिकोंडा पापग्नि मठाधिपति वीर भोजाचार्य और वीर पापाम्बा ने उन्हें गोद लिया था। वीर ब्रह्म का असली नाम 'वीरक बोटलय्या' था। वे प्रतिभासंपन्न व्यक्ति थे, ज्ञानी थे। 12 साल की उम्र में ही समस्त कलाओं में निणात हो गये थे। बचपन में ही पिता की मृत्यु हुई थी। उन्होंने माता को सान्त्वना देकर मुक्ति मार्ग और जीव की चार दशाओं के लक्षण बता कर, अपने विश्व-रूप का परिचय दिया था और माँ की अनुमति से देशाटन के लिए निकल पड़े। तीर्थ यात्राओं के दौरान हरिहर क्षेत्र के समीप राजकुमार आनंद सिंह मिलते हैं। राजकुमार आनंद सिंह गोहत्या करने के प्रायश्चित में आनंद भैरव योगी बन जाते हैं। वीर ब्रह्म ने उन्हें द्वादशी महामंत्र और शापावसान प्रदान किया था। यही आनंद सिंह अपने अगले जन्म में सिद्धय्या के रूप में वीर ब्रह्म के अत्यंत प्रिय शिष्य बने। ऐसी किवदंति प्रचलन में है।

देशाटन करते हुए वीर ब्रह्म बनगानपल्ले पहुँचे थे और उसी गाँव में रहने वाली महाज्ञानी गरिमि रेड्डी अच्चम्मा के घर रह कर 12 वर्ष तक गायें चराने का काम करते रहे। उसी समय उन्होंने एक गुफा में बैठकर 'काल ज्ञान' की रचना की। भूत (अतीत) को भविष्य के रूप में बताना, बीते हुए को बीतने वाले के रूप में बता कर अपने समय को स्वयं पीछे कर लेना 'काल ज्ञान' कहा गया है। लेकिन वीर ब्रह्म ने अपने 'काल ज्ञान' में भूत काल को भूत, भविष्य और वर्तमान के रूप में तथा वर्तमान के रूप में तथ वर्तमान को भूत, भविष्य और वर्तमान के रूप में बताया है। वास्तव में संभावित विषयों के बारे में बताना ही 'काल ज्ञान' है।

वीर ब्रह्म ने अन्नाजय्या नामक एक ब्राह्मण जिज्ञासु को उपदेश दिया था और अपना मठ सौंप दिया था। बनगानपल्ले से कंदि मल्लय्यापल्ले पहुँचे थे। कंदि मल्लय्यापल्ले में रह कर

आजीवन बढ़ई और लुहारी का काम करते हुए भक्तों और शिष्यों को 'सुज्ञान' प्रदान करते थे। वीर ब्रह्म की महिमाओं से प्रभावित होकर कंदिमल्लरूयापल्ले के निवासी शिवकोटय्या ने अपनी पुत्री और ब्रह्मज्ञानी गोविंदम्मा के साथ उनका विवाह करवाया।

वीर ब्रह्म आशु कवि थे। उन्होंने ठेठ तेलुगु में गीत गाते हुए जनता को जागृत किया है। काल ज्ञान, जीवैक्य बोध, द्विपद काल ज्ञान, परमहंस, कालिकाम्बा पद्य, कालज्ञान गोविंद वाक्य आदि उनकी रचनाएँ हैं। 'काल ज्ञान तत्व' और 'गोविंद वाक्य' बहुत लोकप्रिय रचनाएँ हैं।

वीर ब्रह्म का युग अराजकता और अस्थिरता का युग था। हिन्दू और मुसलमानों के बीच वैमनस्य का वातावरण था। हिन्दुओं में ऊँच-नीच का भेद भाव चरम स्थिति पर पहुँच चुका था। अंधविश्वास, अविवेक, अज्ञान तथा अधर्म का राज था। ऐसी संक्षुभित स्थिति में वीर ब्रह्म ने उपदेश दिया था कि ऊँच-नीच का भेदभाव केवल मनुष्य की कल्पना है। ईश्वर के सामने सब बराबर हैं, ज्ञानी पूजनीय होता है, चाहें वह किसी भी धर्म व जाति में क्यों न पैदा हो, अंधविश्वास अज्ञानजन्य है, भ्रष्टाचार एवं अधर्म मनुष्य के अहं और स्वार्थ के परिणाम हैं। वीर ब्रह्म ने मूर्तिपूजा, पशुबलि और बालविवाह का खंडन किया है। जनता को सचेत करते हुए उन्होंने कहा है:

"चेप्प लेदनक पोय्येरू जनुलारा
गुरूनि चेरिम्रोक्कि ब्रतक नेरचु"

अर्थात् हे नर! यह नहीं कहना कि मैंने नहीं बताया है। गुरु की शरण में जाकर जीना सीखो।

वीर ब्रह्म का निम्न तत्व अत्यंत प्रसिद्ध है:

"चिल्लर राल्लकु म्रोक्कुचुनुन्टे
चित्तमु चोडियो नोरे अरे
चित्तमु नन्दुन चिन्मय ज्योतिनि
चूचुचु नुन्डुट सरे सरे"

हे नर! पत्थरों को पूजते रहने से चित्त बिगड़ जाएगा। चित्त में स्थित चिन्मय ज्योति को देखते रहना ही श्रेष्ठ मार्ग है। अन्यत्र उन्होंने कहा है:

"काशी कि पोवनेला तीर्थमु
मोसुक रावनेला
काशी तीर्थमु कन्नुल नुन्नदि
बेसि कन्नु शिव काशिंग नुन्नदि"

काशी जाकर गंगा जल क्यों लाते हो? काशी का पवित्र जल तो अपनी आँखों में उपलब्ध है। वीर ब्रह्म यह बताते हैं कि काशी की यात्रा करने से किया हुआ पाप मिट नहीं जाएगा।

वीर-ब्रह्म ने जाति व्यवस्था पर सीधा प्रहार किया था। उनका कहना था कि जन्म से सब बराबर हैं। ऊँच-नीच का भेदभाव लेकर कोई पैदा नहीं होता। अतः जाति भेद एक भ्रम मात्र है। वास्तव में दो ही जातियाँ हैं- स्त्री और पुरुष। जाति के नाम पर लड़ना मूर्खता है। वीर ब्रह्म कहते हैं:

"येदिरा कुलमु ओरि
नाद कुलम्बनि नडपरा जाण,
सार मन कुलमु ओंकारम युन्डु"

नाद माने ओंकार है। हम हवा जो लेते हैं वही ओम है। मतलब सभी मानव हवा से ही जिंदा है। अतः सब समान हैं।

वीर ब्रह्म के शिष्यों में अन्नजय्या (ब्राह्मण), दूदेकुला सिद्धय्या (मुसलमान), मादिरा कक्कय्या (चमार) प्रमुख हैं।

### 12.4.3 दूदेकुला सिद्धय्या (1665-1735)

सिद्धय्या का जन्म कडपा जिले के 'मुडुमाला' गाँव मे एक मुसलमान परिवार में हुआ था। वे जाति से दूदेकुला (बुनकर) थे। सिद्धय्या नाम से मुसलमान होने का आभास नहीं होता पर, 'रायलसीमा' प्रांत में हिन्दू धर्म और जातियों से संबंधित नामों को मुसलमान अपनाते हैं और हिन्दुओं में भी मुसलमानों के नाम रख लेने का रिवाज़ है। कहा जाता है कि पीर साहब और आदम बीबी को बहुत दिन तक संतान की प्राप्ति नहीं हुई थी। एक सिद्ध की महिमा से उन्हें संतान की प्राप्ति हुई। इसलिए उनका 'सिद्धय्या' नाम रखा गया है। सिद्धय्या के होश संभालने तक हम महान प्रवक्ता के रूप में वीर ब्रह्म की बड़ी ख्याति हुई थी। वीर ब्रह्म की महिमाओं से प्रभावित सिद्धय्या उनके शिष्य बनने की इच्छा से उनके पास पहुँचे थे। अनेक कठिन परीक्षाओं का सामना करते हुए प्रिय शिष्य का स्थान प्राप्त किया है। लेकिन बहुत विरोध होता है। कोई नहीं चाहते थे कि एक मुसलमान का लड़का हिन्दू गुरु का शिष्य बने और एक हिन्दू गुरु एक मुसलमान लड़के को शिष्य का स्थान दे। यहाँ तक कि वीर ब्रह्म के परिवार के कुछ सदस्यों ने भी इसका विरोध किया था। इसकी शिकायत नवाब तक भी पहुँच गयी थी। लेकिन वीर ब्रह्म ने किसी की परवाह न की। हिन्दू-मुस्लिम धर्म के तमाम बंधनों को तोड़ कर गुरु शिष्य दोनों एक अद्भुत और बेमिसाल इतिहास बने हैं। इसलिए उनके नाम मुहावरा ही चल पड़ा कि वीर-ब्रह्म जैसा गुरु नहीं और सिद्धय्या जैसा शिष्य नहीं। सिद्धय्या ने जाति भेद की निंदा करते हुए जो तत्व लिखा है, अत्यंत प्रसिद्ध हुआ है। उन्होंने कहा है कि मेरी जाति के बारे में पूछंगे तो इन दुष्टों को, मूर्खों को कैसे बताऊँ?

"ये कुलमनि ननु विवरमडिगिते
येमनि दलपुदु लोकुलकु
पलुगाकुलकु दुर्मार्गुलकु
ई दुष्टुलकु"

सिद्धय्या ने कड़े शब्दों में जाति भेद का खंडन किया है। हिन्दू-मुस्लिम की एकता पर बल दिया है। सर्वधर्म समरसता का उपदेश दिया है।

### 12.4.4 ईश्वरम्मा और सुंदरीमणि

वीर ब्रह्म की भाँति ही आध्यात्मिक चिंतन तथा योगमार्ग का अनुसरण करते हुए कविता लिखने वाली तेलुगु में दो कवियित्रियाँ हुई हैं। एक ईश्वरम्मा, जो वीर ब्रह्मा की पोती थी। दूसरी सुंदर मणि, जो वीर ब्रहम की शिष्य परंपरा में आती हैं। दोनों निम्न जाति से हैं। दोनों ने आत्मज्ञान प्राप्त कर कविताएँ लिखीं।

ज्ञानी ईश्वरम्मा ने वीर ब्रह्म के उपरांत आचार्य स्थान ग्रहण किया था। बचपन से ही घर में आध्यात्मिक वातावरण मिलने के कारण सांसारिक सुखों के प्रति उनका ध्यान नहीं गया। वह धर्म चिंतन तथा योग-ज्ञान देने के क्रम में निर्गुणोपासिका बनी। यह तेलुगु की विशेषता ही कहना चाहिए कि तेलुगु में मधुर रसपर्ण कविताएँ लिखने वाली कवयित्रियाँ नहीं हुई हैं बल्कि आध्यात्मिक चिंतन युक्त ज्ञान की कविताएँ लिखने वाली कवियित्रियाँ अवश्य हुई हैं। तेलुगु में मीरा, गोदा जैसी भक्त कवियित्रियाँ न होना ही इसका प्रत्यक्ष

प्रमाण है। 18वीं शताब्दीं में समाज में नारी के लिए कोई सम्माननीय स्थान नहीं था। कई अपमानों व अवहेलनाओं को सहते हुए भी ईश्वरम्मा ने जीवन के उच्च आदर्शों की स्थापना अपनी रचनाओं में की है। ईश्वरम्मा ने धार्मिक सहिष्णुता का उपदेश दिया है और वर्णभेद का खंडन किया हैः

"वर्ण विवेकमुतो पनि लेदनि
स्त्री पुरुषुलु तेलियंडन्नाडु"

स्त्री-पुरुष जानें कि वर्ण विवेक से कोई काम नहीं हैं। ईश्वरम्मा की भाँति ही दार्ल सुंदरी मणि को आत्म-ज्ञान और योग-ज्ञान प्राप्त हुआ था। वेमना जिस प्रकार धर्म का उपदेश दिया करते थे, उसी प्रकार सुंदरी मणि ने भी धर्म का उपदेश दिया था। उन्होंने 1833 में 'भावलिंग शतक' की रचना की। जाति व्यवस्था का खंडन किया। कर्मकांडों की निंदा की। मूर्तिपूजा का विरोध किया। अंधविश्वासों की खबर ली। वैदिक कर्मकांड और पशुबलि की खबर लेती हुई उन्होंने कहाः

"कटिकवानि नैन गाल् मोक्क वच्चुनु
सोमयाजी मुखमु चूडरादु
पारुडैन बाडु पशुवुल चंपुना"

चाहे तो कसाई का पैर छू सकते हैं लेकिन सोमयाजी का मुख नहीं देखना चाहिए। विवेकशील व्यक्ति पशुओं की हत्या नहीं करता है।

सुंदरी मणि गागर में सागर भरने वाली प्रतिभा संपन्न कवियित्री थीं। जाति और ऊँच-नीच के भेदभाव का खंडन करते हुए कहती हैं कि आदमी का शील और गुण ही प्रधान है।

"गोप्प कुलमु गोप्प धनमु कादु
गोप्प विद्य कादु कोटि येल
मा़ट निल्पेनेनि मादिगैननु गोप्प"

जाति महान नहीं है, धन महान है, विद्या भी महान नहीं है, यदि चमार वचन बद्ध होता है तो वही महान है।

सामंती युग में राजाओं के कीर्तिगान के अनुकूल भक्ति बदल गयी थी। लेकिन संत कवियों ने इसे ईश्वर की ओर मोड़ दिया और प्रमाणित किया है कि सत्तारूढ़ वर्गों के लिए ऊँच-नीच का भेदभाव हो सकता है पर ईश्वर के सामने सब बराबर हैं। अंततः निम्न जातियों के लोगों में आत्म गौरव और विश्वास बढ़ाने की चेष्टा करना, किसी के आश्रम में न जाना, सर्वधर्म समरसता का प्रतिपादन करना, वर्ण-व्यस्था का खंडन करना नारी के लिए समानता का दर्जा देना, उच्च वर्गों के रीति-रिवाजों और बाह्याडांबरों का खंडन करना, भाईचारा का प्रचार करना आदि संत कवियों की विशेषताएँ हैं। निम्न वर्गों से कवियों/कवियित्रियों का आना सचमुच क्रांतिकारी घटना है। वास्तव में संत साहित्य स्वतंत्रता और समानता का पक्ष लेने वाला साहित्या हैं।

### 12.4.5 रामदास

भक्त रामदास का जन्म 17वीं सदी में खम्मम जिले के नेपकोण्डपल्ली गाँव में हुआ है। रामदास का असली नाम कंचर्ला गोपन्ना है। 'राम' में विश्वास रखने के कारण ही उनका नाम रामदास चल पड़ा है। रामदास के कीर्तन व पद वैसे साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है लेकिन उनके रामभक्ति से युक्त कीर्तन व पद सामान्य जनता की जुबान पर नृत्य करते हैं। रामदास के बारे में जानना इसलिए भी जरूरी हैं कि जिस काल में रामदास जिंदा

थे, वह काल (1650 के आस-पास) अबुल हसन तानीशा का काल था। 'भद्रचलम' के तहसीलदार के पद पर गोपन्ना काम करते समय सरकारी पैसे से मंदिर बनाते है। कर न भरने के कारण तानीशा बारह साल के लिए गोपन्ना को जेल भेज देते हैं। जेल में गोपन्ना ने भक्ति और दुःख युक्त कीर्तन लिखा है। वस्तुतः वही कीर्तन 'रामदास कीर्तन' के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। रामदास के समस्त कीर्तन राम की भक्ति से ओतप्रोत है रामदास एक भक्त होने के नाते उनका व्यक्तिगत दुःख और दर्द का ही समावेश उनके कीर्तनों में हैं, उनके कीर्तनों में सामाजिक विषमताओं का जिक्र नहीं है। लेकिन उस समय के धर्म और राजनीति में व्याप्त निराशा बराबर वर्तमान है। इसी का जिक्र करते हुए ऐटुकूरि बलराम मूर्ति जी लिखते हैं 'पुराना समाज शिथिल हो रहा था। यह कोई नहीं जानता है कि नया समाज कैसा होगा। इस संक्रांति युग में सब कुछ ईश्वर का ही है कह कर भक्ति साहित्य लिखा गया है। '

धर्म और राजनीति में व्याप्त अव्यवस्था रामदास के कीर्तनों में मनुष्य में निहित क्रूरता के प्रति पश्चाताप व्यक्त करते हुए कहा है जो तेलुगु में अत्यंत लोकप्रिय है-

"हे दैव शिखामणि राम;
आज्ञानतावश किया कर्म क्रूर
हिसाब न लगाओं हे राम,
कर दरिद्रता का परिहार"

(वेमना)

## 12.5 तेलुगु संत साहित्य की विशेषताएँ

तेलुगु के संत (समाज) कवियों में निम्न विशेषताएँ पायी जाती हैं :

- निम्न जातियों के लोगों में स्वाभिमान एवं आत्मविश्वास की भावनाएँ जगाना।
- राजाओं का आश्रय तिरस्कृत करना।
- स्त्रियों के लिए बराबर का दर्जा देना।
- उच्च जातियों के आचारों तथ आबंडरों का खंडन करना।
- धर्म का जनतांत्रिककरण करना।
- व्यवस्था के ह्रासोन्मुख मूल्यों का खंडन करना और
- यह स्पष्ट करना कि ईश्वर ऊँच-नींच का भेद नहीं मानता है

तेलुगु के संत कवि अवतार, मूर्तिपूजा, बाह्याडंबर तथ अंधविश्वास आदि मिथ्या धारणाओं का विरोध करता है। उदाहरण के लिए निम्न पद द्रष्टव्य हैः

तोलु कडुपु लोन दोड्डु वाडुंडगा
राति गुँग्ल नेल राशिबोय
राई देवुडैन रासुल म्रिंगदा

(वेमना)

अर्थात् पत्थरों को क्यों नैवेद्य चढ़ाते हैं? यदि जड़ पत्थर ही ईश्वर हो तो वह नैवेद्य को क्यों नहीं खाता? तात्पर्य यह है कि पत्थरों की पूजा करना निरर्थक है।

## 12.6 सारांश

तेलुगु के समाज कवि निम्न जातियों से आते हैं। अतः उनका साहित्य सामान्य जनता का साहित्य है। इसीलिए भाषा और शिल्प जनता के निकट है।

उनकी कविता आडंबर शून्य है। काव्य शास्त्र व व्याकरण से उनका कोई संबंध नहीं है। वे उनकी जीवन के कटु अनुभवों को सरल एवं सहज भाषा में अभिव्यक्त करते हैं। उनके लिए भाषा महत्वपूर्ण नहीं है। भाषा की अपेक्षा विचार मुख्य है। कलम स्याही से कोई संबंध न रखकर जुबानी कविता कह देते हैं। इसलिए उनके पद जनता की जुबान आज भी जिन्दा हैं। निम्न वर्ग से आये ये कवि उच्च वर्ग के कवियों के बराबर का स्थान प्राप्त करते हैं। यही इन कवियों के सामाजिक होने का सशक्त प्रमाण है।

# इकाई 13 निर्गुण संत परंपरा

## इकाई की रूपरेखा


13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 निर्गुण संत काव्यः दलित चेतना का प्रस्थान बिन्दु

13.3 प्रमुख निर्गुण संत

13.4 निर्गुण संत कवियों का सामाजिक पक्ष

13.4.1 संत काव्य का ब्राह्म्ण विरोध

13.4.2 हिंदू अवतारवाद का विरोध

13.4.3 निर्गुण और अद्वैत

13.5 पोथी और ज्ञान का निषेध

13.6 मन्दिर-मस्जिद, माया तथा ईश्वर के प्रति संतों की दृष्टि

13.7 सारांश


## 13.0 उद्देश्य

निर्गुण संत परपरा ने मध्यकालीन भारतीय भक्ति साहित्य में तत्कालीन यथास्थितिवादी जड्मूल परंपरा का सशक्त स्वर में विरोध करके समतामूलक समाज निर्माण का प्रयास किया था। प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य ज्ञान (पोथी), ईश्वर (मन्दिर) तथा कर्म (पाखण्ड) जैसे धार्मिक कर्मकांड, जातिप्रथा, अंधविश्वासों के विरोध में उठे चेतना के प्रखर प्रतिरोध से परिचित कराना है। जिसे निराला के शब्दों में कहें तो 'ब्राह्मण आये पोथियों में जनता को बाँधे हुए (राजे ने अपनी रखवाली की) या मुक्ति बोध के शब्दों में 'शुद्रों' ने पहली बार अपने सन्त पैदा किये' के दृष्टि, बोध और चेतना से साहित्य के विद्यार्थियों को परिचित करना है। साथ ही उस विश्लेषण पद्धति तथा समझ का खुलासा भी करना है जिसके निष्कर्ष में सन्तकाव्य या तो प्राचीन भारतीय वर्णवादी चिन्तन की बेमेल उद्धरणि है या भारतीय चिंतन परम्परा का लोकोन्मुखी विकास या वह लोक और शास्त्र के द्वन्द्व का परिणाम है; या आर्थिक गतिविधियों के परिवर्तन की 'दो दूना चार' अभिव्यक्ति है को समझा जाय। सन्त काव्य भारतीय वर्णव्यवस्था की त्रासदी और वेदना के गहरे साक्षात्कार से प्रकट हुआ है और उसमें विद्रोह की प्रबल ज्वाला है, जो सैकड़ों वर्षों बाद आज दलितों की झोपड़ी में और खजड़ी पर गूंजती धधकती है। साहित्य के अध्ययन से जुड़ा प्रत्येक विद्यार्थी इस अनुभव संगत 'आँखिन देखी सच' को समझ सके और इसे 'अन भै साँचा' कह सके। संक्षेप में, प्रस्तुत इकाई 'निगुर्ण संत परम्परा' के अध्ययन के उपरांत आप :

- भारतीय समाज व्यवस्था के सबसे क्रूर अमानवीय और निर्मम वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था की सच्चाई को समझ सकेंगे।
- ब्राह्मणवाद ने कैसे श्रेष्ठता के दंभ और ईश्वर, कर्मकाण्ड तथा शास्त्रों की निर्मिति से शूद्र समाज को गुलामी की बेड़ियों में ज़कड़ने के षड्यंत्र को सफलता से अंजाम दिया, को जान सकेंगे।

- निर्गुण सन्त काव्य धारा के लगभग सभी कवि शूद्र अतिशूद्र समाज से आते हैं जिन्होंने वर्णव्यवस्था के क्रूर दंश तथा असम्मान की पीड़ा को प्रत्येक स्तर पर झेला है। उनकी वाणी में वह वेदना सच्चे दिल की पुकार बन कर किस प्रकार अभिव्यक्त हुई है का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सन्त काव्य मात्र दलित वेदना का काव्य ही नहीं बल्कि विद्रोह और बगावत का काव्य है, जिसकी परिवर्तनवादी मूल संवेदना को समझ सकेंगे।
- अब तक सन्त काव्य के हुए मूल्यांकन की पारम्परिक ब्राह्मणवादी-प्रतिमान एवं दृष्टि के कारण संत काव्य की सही पड़ताल न होने के कारणों की आप मिमांसा कर सकेंगे।

## 13.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में भक्ति काव्य, उसमें भी सन्त काव्य के उद्भव तथा विकास को लेकर कई मत रहे है। किसी आचार्य ने इसे 'मुस्लिम आक्रमण से हिन्दू जाति में पैदा होने वाली निराशा' के रूप में समझा तो किसी ने 'भारतीय चिंतन परम्परा के लोकोन्मुखी विकास' के रूप में। कतिपय आलोचकों ने 'आर्थिक परिवर्तन खासकर व्यापार, हस्त कौशल, तकनीक के विकास के रूप में कुल मिलाकर उत्पादन के साधनों तथा उत्पादक शक्तियों के विकास से बनने वाले ताने-बाने (मानवीय सम्बन्ध) के रूप में समझने का प्रयास किया और स्थापना दी कि व्यापारिक पूंजी के विकास के साथ सामंती समाज टूट बिखर रहा था।' सन्त काव्य सामन्तवाद विरोधी चेतना का काव्य है। उसमें नवजागरण के मूल मंत्र समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व के भाव हैं। निश्चय ही यह विश्लेषणपूर्ण नहीं है और साहित्य को समाज के मूलाधार की सीधी अभिव्यिक्त नहीं माना जा सकता। इसी संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ विद्वान इसी बात को 'लोक जागरण' जैसे शब्दों द्वारा थोड़ा ज्यादा सृजनात्मक विश्लेषण करते दिखलाई पड़ते हैं लेकिन यह कहने में कोई संकोच नहीं कि निर्गुण कवियों की बोली-वानी की सार्थक व्याख्या होनी अभी भी शेष है।

सन्त काव्य धारा को ज्यादे सार्थक और सही विश्लेषण की और हमारा ध्यान मुक्तिबोध खींचते हैं। वे पूरी काव्यधारा को 'शूद्रों के पहले सन्त' के जन्म के रूप में देखते हैं। विस्तृत विश्लेषण तो वहाँ उपलब्ध नहीं है लेकिन सन्त काव्य के मर्म को उसके उद्भव और विकास को, समझने का यह बीज-सूत्र है। क्या कारण है कि हिन्दी साहित्य में एक साथ बड़ी संख्या में शूद्र कवियों का आगमन होता है। सामन्तों राजाओं के गुण-गान उनके द्वारा कन्या अपहरण की वीरता का गायन नारियों के अंग-प्रत्यंग के चित्रण तथा ईश्वर वन्दना उनके काव्य का विषय नहीं बना इसके स्थान पर सामाजिक भेदभाव, जाति, पाति ढोंग-पाखण्ड, ऊँच-नीच, वर्णव्यवस्था, ईश्वर-मन्दिर का नकार महत्वपूर्ण विषय केन्द्र में थे। समाज के शीर्ष पर बैठे ब्राह्मण, उनकी रची पोथियों, उनके ज्ञान तथा उनकी भक्ति पर एक साथ लगभग सभी शूद्र कवियों ने हल्ला बोल दिया। यह सभी श्रम से जुड़े संत अपना दैनिक कार्य करते हुए समाज सुधार के एक बड़े अभियान का हिस्सा बनें। लोकोन्मुखी चेतना और सामन्तवाद विरोध तथा लोक जागरण की व्यवस्थाओं से इस ब्राह्मणवाद-विरोधी चेतना को समझा जा सकता है। समय-समाज के बीच रखकर साहित्य का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया जाना चाहिये, लेकिन जब समय समाज के मुख्य अन्तर्विरोध की समझ ही धुंधली हो तो निकर्ष विश्लेषण तथा विमर्श सब कुछ दोषपूर्ण हो उठता है। एक प्रधान सच को नकार देने से बहुत सारी गौण सच्चाईयों के बयान मात्र से कोई विश्लेषण निर्दोष नहीं हो सकता। सन्त काव्य धारा के उद्भव और विकास को सही रूप में विश्लेषित नहीं किया गया क्योंकि ब्राह्मणवादी सौन्दर्य दृष्टि के कारण सन्त कवियों के

इस सच को नहीं देखा गया। इसलिए बुनियादी सामाजिक सच जो निश्चय ही वर्णव्यवस्था है, सन्त काव्य का सही विश्लेषण किया जाना जरूरी है। भारतीय समाज लम्बे समय से पहले चरण में वर्णवाद और बाद में जाति व्यवस्था के निर्मम ढाँचे से निर्मित रहा है। शीर्ष पर बैठे ब्राह्मणों ने 'ईश्वर' तथा 'ज्ञान' जिसे उन्होंने अपनी पोथियों द्वारा रचा था, को हथियार बनाकर शूद्र समाज ही नहीं सारे समाज को अपने नियंत्रण में रखा और दो तिहाई समाज को गुलामी की लौह जंजीरों में जकड़े रखा। यही कारण है कि सबसे पहले सन्त कवि कबीर आदि कवियों ने 'पोथा' और 'कागद लेखा' को सिरे से नकार दिया।

*पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।*
*ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।*

अथवा

तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी

'पोथी और प्रेम' तथा 'कागद लेखी सन्त और आँखिन देखी सच' के द्वंद्व को मात्र दलित दृष्टि से ही समझा जा सकता है। प्रस्तुत इकाई में ब्राह्मणवादी चिंतन के विरूद्ध शूद्र सन्तों की विचार पद्धति, मान-संवेदना तथा दलित-दृष्टि का परिचय दिया जा रहा है।

## 13.2 निर्गुण सन्त काव्य : दलित चेतना का प्रस्थान बिन्दु

भारतीय समाज व्यवस्था के निचले पायदान पर खड़े समग्र दलित समाज की पीड़ा, वेदना और विद्रोह का प्रामाणिक दस्तावेज निर्गुण सन्त काव्य है। दलित समाज की उपेक्षा तथा यातना का आधार तर्कहीन वर्णव्यवस्था तथा ईश्वर संबंधी विधि-विधान में निहित है। सगुण ब्रह्म की अवधारणा अपने जन्म से लेकर ईश्वरीय लीला के वर्णन मे सदैव राजा, और मन्दिर के पक्ष में कर्मकांड का निर्माण करता रहा। उपनिषदों, पुराणों और स्मृतियों में वर्णित विधि-विधान दलित विरोधी ही है लेकिन ब्राह्मण के पक्ष में उसकी श्रेष्ठता का बखान करता है। निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा नाथपंथियों सिद्धों और जैन मुनियों के परवर्ती विकास में ही नहीं दलित चिंतन की आधार रेखा के रूप में समझना चाहिए। सगुण पंथ आरंभ से ही ब्राह्मण, गो और धर्म का सेवक तथा रक्षक था। दलित समाज से उसका कोई रिश्ता नहीं बनता था। सन्त कवियों को सुधारवादी अथवा समाज सुधारक मान लेने वाले आचार्यों ने भी सन्त काव्य के इस प्रस्थान बिन्दु को नहीं देखा जिसमें दलित सन्तों की भक्ति पद्धति तथा उसका आलम्बन न ईश्वर, न मन्दिर जीवी है, न पोथी प्रमाणित। इसी रूप में शूद्र सन्तों की धर्म संबंधी अवधारणा में ईश्वर, पोयी और मंदिर वर्णव्यवस्था के पोषक तत्व माने गए हैं। वह धर्म भी कर्मकाण्डी-पुरोहिती से दूर सहज-साधना के रूप में वर्णित है। यदि हम ईश्वर, भक्ति तथा धर्म इन तीनों केन्द्रीय तत्वों की व्याख्या निर्गुण शूद्र सन्तों तथा पारंपरिक ब्राह्मणवादी चिंतन को साथ रखकर करें तो निर्गुण सन्तों की दलित चेतना का प्रस्थान बिन्दु स्पष्ट हो जाता है।

सामान्यतः कबीर, दादू, नानक, रैदास, सदना, धन्ना, पीपा, सेना, नाई, रज्जब आदि शूद्र सन्तों की कविता में वर्णित, ब्राह्मणवादी चिंतन के विरोध को अत्यंत सौम्य रूप में देखा जाता है। लेकिन सूक्ष्म विश्लेषण तथा पर्यालोचन से यह स्पष्ट होता है कि निर्गुण कवियों ने ब्राह्मणवादी चिंतन पद्धति के समानान्तर लगभग उसी भाषा में एक नये समाज का स्वप्न तथा एक नयी विचार पद्धति का अविकार किया जो दलित चिंतन-चेतना का एक परिधि में ही सही प्रस्थान बिन्दू है। इसीलिए मध्यकालीन समय-समाज के भीतर नये चिंतन, चेतना तथा साहित्य सृजन के रूप में ही निर्गुण सन्त काव्य धारा को समझना होगा। भक्ति आंदोलन के निर्गुण चिंतन पर भाष्य करने वाले आचार्यों ने निर्गुण चिंतन के सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष की व्याख्या करते समय उसके प्रतिरोधी स्वर को सही

रूप में प्रस्तुत नहीं किया। संत काव्य धारा के सन्दर्भ में प्राथमिक व्याख्या सन्तों का समाज दर्शन तथा जीवन दर्शन की होनी चाहिए और बाद में उनकी कविताओं की दार्शनिक व्याख्या। इस संदर्भ में संत काव्य के उद्‌भव का पहला कारण प्रचलित समाज दर्शन और संतों के समाज चिंतन के बीच का प्रतिरोध है। यहीं विरोध जीवन दर्शन में तथा भक्ति-परंपरा पद्धति में लक्षित होता है इस सब में भक्ति खासकर निर्गुण संत काव्य प्रचलित वर्णवादी समाज के विरूद्ध एक विद्रोह की आवाज है। जब कबीर 'जो घर जारें आपनो' की घोषणा करते हैं तो वह 'घर' पूरा समाज है। जब वे 'जागने और रोने' की बात करते हैं तो तत्कालीन शूद्र समाज की पीड़ा जानने से है। यह वही संपूर्ण दलित समाज है, जो मनुष्य मात्र के भरण-पोषण की सामग्री पैदा करता है। ब्राह्मण एक मुट्ठी अन्न तो पैदा नहीं करता लेकिन स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य के तर्कहीन प्रलाप से रोज एक नया तर्कशास्त्र और ईश्वर पैदा करता है, और स्वयं को सभी से श्रेष्ठ घोषित करता है। इस यथास्थितिवादी परंपरा के विरोध में 'बिजली को कौंध' की तरह प्रकट होने वाली भक्ति जिसके लिए सैकड़ों वर्षों से मेघ खण्ड एकत्र हो रहे थे। अपने समतावादी विचारवादी विचार दर्शन और बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय के पक्ष में आंदोलन के रूप में प्रवाहित होती हैं।

## 13.3 प्रमुख निर्गुण संत

निर्गुण धारा ने क्रांतिकारी तेवर मुख्य रूप से तत्कालीन समय की संकीर्ण जातिवादी, कर्मकांडी यथास्थितिवादी विचार से परिपूर्ण धर्म के विरोध में अपनाया था। वर्णाश्रम समर्थक सगुण धारा से विपरित धर्म ईश्वर और वर्ण विरोधी एवं शास्त्रनिरपेक्ष धारा के रूप में निर्गुण संत परंपरा का विकास हुआ। इसका प्रभाव हमें उत्तर भारत, बंगाल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात और पंजाब तक के प्रदेशों में समान रूप से दिखाई देता है। यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि लगभग सभी निर्गुण संत शूद्र, अतिशूद्र (अछूत) पिछड़े वर्ग के थे तथा इनमें बड़ी संख्या में महिलाएं हैं।

ब्राह्मण-श्रेष्ठता को चुनौती देने वाली, ब्राह्मणवाद विरोधी निर्गुण संत परम्परा बुद्ध, चार्वाक, लोकायत तथा सिद्धनाथों की समतावादी, शून्यवादी परंपरा को ही आगे बढ़ाती है। बड़ी ही चोट करने वाली भाषा में कबीर ब्राह्मणवाद की पोल खोलते हुए अपने शब्दों में चुभते सवाल करते हैं-

> पहिरि जनेऊ जो ब्राह्मण होना, मेहरी क्या पहिराया।
> वो तो जन्म की सूद्रिन परसे, तू पांडे क्यों खाया।।

कबीर से पहले संत कवियों में सदना कसाई, लालदेव मेहतर, सेना नाई, गोरा कुम्हार, विसोबा खेचर आदि सभी निम्न जाति के निर्गुण संत हुए थे। संत नामदेव दरजी जाति के थे, जिनका काम कपड़े सीना तथा छापना था। कबीर जुलाहा थे, रैदास जी चमार, धर्मदास कसौधन तेली तथा धन्ना जाट थे। महाराष्ट्र के संत तुकाराम वणिक थे तो चोखामेळा महार अर्थात अछूत थे। जनाबाई दासी के रूप में संत नामदेव के घर पर काम करती थी। ये सभी श्रम से जुड़े कार्य करने वाले सामान्य जन थे। ब्राह्मणवाद ने श्रम का तिरस्कार किया और उन सभी श्रमिकों, किसानों, कारीगरों को यद्यपि वे संत थे उन्हें भी अछूत करार दिया। उत्पादन कार्य से जुड़ी जातियों के साथ पुरोहितों द्वारा शूद्रों-अछूतों जैसा ही व्यवहार किया जाता रहा है। नामदेव अपनी बात को स्पष्ट रूप से कहते हुए जाति व्यवस्था के विरोध में आवाज उठाते हैं-

> हीन दीन जाति मोरी पंढरी के राया।
> ऐसा तुमने नामा दरजी कायक बनाया।
> कहा करऊ जाति, कहा करऊ पाति।
> राम का नाम जपऊ दिन राती।

एक ओर रोजी-रोटी के लिए श्रमसाध्य कार्य में जुटे ये संतगण सामाजिक संरचना बदलने के लिए दिन-रात वैचारिक संघर्ष कर रहे थे। एक ऐसी मूल्य व्यवस्था जो समता और न्यायाधारीत हो, के पक्ष में विचारपरक कविता रचने में जीवन न्यौछावर करते हैं। हिंदी साहित्य में श्रमण परंपरा द्वारा वैचारिक धरोहर की निर्मिति का उदाहरण अपने-आप में विरल है। शब्द और जीवन की ऐसी एकरसता कम से कम ब्राह्मणवादी चिंतन सरणि में नहीं दिखाई पड़ती बल्कि इसके उलट शब्दों के जाल बिछाकर पाखण्ड फैलाकर स्वार्थपूर्ति के अतीशय निम्नतर ब्राह्मणवादी भाव और विचार ही चिंतन का आधार है। दलित निर्गुण संत कवि जहाँ दलित जीवन के त्रासद यथार्थ को झेलते हुए उपेक्षा के दंश के शिकार थे। वहीं सामाजिक और व्यक्तिगत अनुभूति उनकी कविता के भीतर खौलते लावे की तरह उफनती नजर आती है, और जिसकी अभिव्यक्ति भी अतीशय मार्मिक तथा कठोर शब्दों में हुई है। साहित्यिक सौंदर्य बोधीय आभिजात्य रूचि के लिए गर्हित गाली-गलौच लेकिन दलित चेतना चिंतन का सूत्र वाक्य-

जो तू ब्राह्मण-ब्राह्मणी जाया
आन द्वार तै काहे न आया।

इसी प्रकार से संत चोखामेळा अछूत होने की मूल धारणा को ही प्रश्नांकित करते हैं-

सब कहे मुझे दूर-दूर रहो।
तो कैसे मिलन होगा तुझसे हे श्रीपती।।

कबीर वर्ण-जाति के सोपानीकृत श्रेणीविभाजन को नकारकर अपनी सामाजिक समझ को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं-

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद
हम कत लौहू तुम कत दूध

वर्ण-जाति-ईश्वर और धर्म के विरोध में खड़े होकर प्रस्थापित व्यवस्था को ललकारने वाली परंपरा के ही अन्य एक निर्गुण संत नामदेव अपने आराध्य विट्ठल से यह कहकर उसके अस्तित्व को ही नकारते हैं-

आदि से अंत तक अशौच समाया
स्पृश्य कौन जन्मा न
हीन दीन जात मोरी पंढरी के राया।
ऐसा तुमने नामा दरजी कायक बनाया।।
मेरी कौन गति गुसाई तुम जगत भरन देवा।
जन्महीन करम छीन भूलि गयौ सेवा।।

इस रूप में समग्र निर्गुण संत काव्य शूद्रों-अस्पृश्यों की वेदना को बेझिझक तीखे शब्दों में बयान करके, वर्ण-जाति व्यवस्था की अमानवीय अतार्किकता पर प्रश्न खड़े करता है। कबीर, सदना, ललदेई, सहजोबाई, रैदास, दादूदयाल, सुन्दर दास, मलूकदास, धर्मदास, तुकाराम, रज्जब, नामदेव, चरणदास, जनाबाई, पलटू साहब, नानक आदि सभी का जीवन श्रमसाध्य व्यवसाय, पेशो तथा धंदों से जुड़ा था। इन सभी निर्गुण संत कवियों ने एक ऐसे समाज निर्मिति का सपना देखा था जो अपनी मूलप्रकृति में जनतांत्रिक हो। उनके इस प्रयास और संघर्ष का ही परिणाम था कि यह सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन देश के कोने-कोने तक फैलता गया।

निर्गुण संत कवियों में प्रमुख रूप से जिनकी चर्चा की जाती वे शूद्र थे। धातब्य है कि ब्राह्मण तथा क्षत्रीय जाति भी है और वर्ण भी। जबकि वैश्य और शूद्र वर्ण के साथ-साथ

अनेकानेक जाति उप सूमहों में विभक्त हैं। इसमें भी शूद्र वर्ण अपने पेशे के हिसाब से जाति समूहों में बंटे हैं। मूलतः ये उत्पादन के कार्य में लगे होने से हुआ। इन्हीं अर्थों में वर्ण व्यवस्था या ब्राह्मणवादी व्यवस्था भारतीय समाज की मूलाधार बनती है।

## 13.4 निर्गुण संत कवियों का सामाजिक पक्ष

निर्गुण संत कवियों की कविता के दो स्तर दिखलाई पड़ते हैं। पहला सीधे-सीधे ब्राह्मणवाद, पुरोहितवाद तथा वर्णव्यवस्था का विरोध। दूसरा भक्ति, ज्ञान, दर्शन तथा साधना की रहस्यवादी रीतियाँ। पहले पक्ष पर ज्यादा विचार होता रहा है लेकिन रहस्यवादी कविताओं का मूल ध्वनि खोलने का प्रयास नहीं हुआ है। उन्हे या तो ब्रह्मवादी-ईश्वरवादी मानकर छोड़ दिया गया था तो ब्राह्मणवादी आचार्यों के हवाले से उसे ब्रह्म विद्या बनाकर उसमें निहित दलित चेतना पर धूल-गर्द डालने का रास्ता खोल दिया गया। सामान्य तथ्यों-तर्कों को भी व्याख्या करते समय छोड़ा जाता रहा जो दुःखद है। अस्तु निर्गुण कवियों की काव्य संवेदना तथा उसमें निहित विचार : चिंतन की अभिनव व्याख्या की आवश्यकता आज भी बनी हुई है।

### 13.4.1 संत काव्य का ब्राह्मण विरोध

निर्गुण शूद्र संत कवियों ने सर्वाधिक आक्रमण ब्राह्मणों पर किया है। एक से एक तिलमिला देने वाले तर्क संपूर्ण संत काव्य की विशेषता हैं। ब्राह्मण विरोध को कोई भी दार्शनिक तर्क पद्धति से नहीं अपितु शुद्ध दलित चेतना और दृष्टि से ही समझना सही होगा। सदियों से पीड़ित दलित कवि की वाणी में ब्राह्मण की श्रेष्ठता का अहंकार उसकी अकर्मण्यता उसका दलितों के प्रति घृणित व्यवहार तथा उसका थोथा ज्ञान सर्व प्रथम आकर्षित कंरता है। सबसे पहले वे ब्राह्मण को श्रेष्ठ मानने से इन्कार करते है। कबीर की चर्चित सारणी है -

*एक बूंद एकै मल मूतर एक पंडित ब्रह्मापूत।*
*एक ज्योति से सब उतपना, कौन बाह्मन को सूदा।।*

इसी प्रकार दादू कहते है -

*दादू रूपा घट सोधी नहीं, पंडित ब्रह्मपूत।*
*आगम नीगम सब कथै, घर में नाचे भूत।।*

ब्रह्म भूत जो अगम-निगम कहता है उसके ही घर में भूत नाचता है। कैसी विडम्बना है।

*नाना वर्ण गवा उसका एक वर्ण दूध।*
*तुम कहा के ब्राह्मण हम कहाँ के शूद।।*

रैदास लिखते हैं -

*षट क्रम सहित जु विप्र होते, दृष्टि भगति दृढ़ नाहिं रे।*
*दृष्टि कथा स्यों हेत नाहिं, स्वपच तूले नाहि रे।।*

मानव शरीर के विभिन्न अंगों से उपजने की मनुवादी वर्ण व्यवस्था का सुन्दर दास ने अत्यन्त मनोरंजक दृश्य रचा है -

*थूक सू लार भरयो मुख दोसत, आंखि में गीजरू, नाक में सेढ़ो।*
*और 'सब' 'द्वार' मलीन रहे नित, हाड़ सब मांस के भीतर बेढ़ो।।*
*ऐसे शरीर में वास कियो, तब एक से दीसत ब्राह्मन टेढ़ों।*
*'सुन्दर' गर्व कहा इतना पर, काहे को तू नर चालत टेढ़ो।।*

'मुख' से उत्पन्न होने वाले ब्राह्मण के 'मुखं' की शोभा लार, कीच और सेढ़ों होने पर भी श्रेष्ठता के 'वंश' से टेढ़ी चाल। कितना हास्यास्पद है यह श्रेष्ठता का अहंकार।

संत तुलसीदास निरंजनी कहते है -

*यह क्यों शूद जु यह क्यों पांड़े, एक ही माटी के सब भांड़े।*
*एक हो चाका एक ही गारा, एक कुलाल उपावन हारा।।*

पलटू साहब तो ब्राह्मणवाद के पाखण्ड पर थूकते हैं -

*रामनाम सुनि जूड़ी आने, पूजो दूर्गा चण्डी।*
*लम्बा टीका कांध जनेऊ, बकुला जात पाखण्डी।।*
*बकरी-मेड़ा मछरी खायो, काहे गाय वराई।*
*रूधिर मांस के एके पाण्डे, थू तोरी बम्हनाई।।*

इसी क्रम में संत कबीर दास मानव मात्र एक बराबर होने को अपने प्रबल तर्कों से बताते हैं।

कैसे हिन्द तु सूद्र कहाया सबही एकै द्वारे अपेक्षा।
कैसे ब्राह्मण कैसे शूद्र, एकै हाड़ जाम तन गूद।

उपर्युक्त उद्धरणों में से कहीं-कहीं एक 'ज्योति' अथवा एक 'ब्रह्म' के प्रयोग से इसे आध्यात्म के खाते में डालकर नहीं बल्कि ठोस भौतिक आधार पर व्याख्या की जानी चाहिए। हमें यह जान लेना आवश्यक है कि 'ब्रह्म' और 'ज्योति' का प्रयोग निर्गुण संतों ने आध्यात्मिक संदर्भ में नहीं बल्कि भौतिकवादी तर्क के आधार पर किया है। यहाँ ब्रह्म वह नहीं जिनके मिथक से संपूर्ण ब्राह्मणवाद का ढाँचा खड़ा हुआ है और उसी के चलते ब्राह्मण की श्रेष्ठता का बखान किया गया। उपरोक्त पदों में निर्गुणवादी संत चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के मूल विधि विधान की बुनियाद को ही मानने से इंकार करते हैं। किसी पुरूषरूपी शरीर से चार वर्णों की उत्पत्ति के घोर मिथ्या कल्पना पर कोई महामूर्ख ही विश्वास करके मानव-मानव के बीच भेदभाव का व्यवहार करेगा। मांस, माटी, चाक, गारा उत्पत्ति प्रक्रिया की समानता के बावजूद ब्राह्मण की श्रेष्ठता गलत है। इतना ही नहीं वह त्याज्य है यही मूला भाव है। ऐसे ही 'कर्म' का प्रश्न है। यहाँ भी ब्राह्मण के नीच कर्म करने की बात को महत्व देकर सन्तों के कविता की धार को कम किया जाता है। इसी व्याख्या के लिए सीधे-साधे तर्क हैं। जो श्रेष्ठ हैं वहीं कामचोर भी है। वहीं पाखण्डी है, यही ब्राह्मणत्व की पहचान है।

### 13.4.2 हिंदू अवतारवाद का विरोध

निर्गुण संतों के काव्य में राम, साई, कृष्ण, हरि, माधव और रहीम तथा अल्लाह का प्रयोग बार-बार किया गया है। ब्राह्मणवादी दर्शनकारों ने इन्हें पौराणिक अर्थों में देखा और उसी प्रकार इसकी व्याख्या की। सगुण काव्य को ब्राह्मणवादी ईश्वरवाद का सहारा मिला और ब्राह्मण अर्थात् द्विजवर्ण के जीवनयापन का प्रश्न सरलता से सुलझ गया। उनकी रोजी-रोटी बिना सायास, बिना श्रम किए उन्हें मिलने की व्यवस्था हो गई। निर्गुण संतों द्वारा आलंबन के रूप में जीन नामों का उन्होंने बार-बार उल्लेख किया वे अवतारी रूप नहीं थे, अपने दर्शन को अभिव्यक्त करने का एक माध्यम मात्र थे। कबीर ने स्पष्टतः अपनी एक रमैंणी में कहा है-

ता साहिब कै लागो साथा।
सुख-दुख मेटि रहयो अनाशा।।
ना दसरथ घरि औतरि आवा।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत इस संबंध में विचारणीय है। कबीरदास के राम पुराण प्रतिपादित अवतार नहीं थे, यह निश्चित है।" वे न तो दशरथ के घर उतरे थे और न लंका के रावण का नाश करने वाले हुए न देवकी की कोख से पैदा हुए थे और न यशोदा ने उन्हें गोद में खिलाया था न तो वे ग्वालों के संग घूमा करते थे और न उन्होंने गोवर्धन पर्वत को धारण किया था, न तो उन्होंने वामन होकर बलि को छला था और न वेदोंद्धार के लिए वराह रूप धारण करके धरती को अपने दांतों पर ही उठाया था, न वे गंडक के शालिग्राम है, न वराह, मत्स्य, न कच्छप आदि वेषधारी विणु के अवतार" कबीर के अनुसार उनका राम इस अवतारी राम से अलग है। चोखामेळा (मराठी संत) विष्णु के कई नामों में से एक विट्ठल को जातिप्रथा के कारण बार-बार अस्पृश्यता के दंश झेलने की वेदना की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं कि वह कौन है जिसके शरीर को शुद्ध कहा जाए। सभी तो अमंगल, अस्पश्य है।

वेदों को असौच। शास्त्रा को असौच। पुराण अमंगल असौच से।।
जीव को असौच, शिव को असौच। काया अमंगल असौच की।।
ब्रह्म भी असौच। विणु भी असौच। शंकर अमंगल असौच उसे।।
जनमते असौच। मरन भी असौच। चोखा कहत असौच जन्म से अंत तक।।

संत नामदेव के इस पद में भी अवतारी ईश्वर का बखान नहीं अपितु निर्गुण-निराकार रूप के प्रति आसक्ति है। मैला मलिता सब संसार। हरि निरमल जाकौ अंत न पार ।।टेक।।

मैला ब्रह्मा मैला इंद्र। सहसकला मैला रवि चंद।।
सब जग मैला आनहिं भाई। जन निर्मल जबा हरि गुनगाई

इस प्रकार नामदेव, कबीर, चोखामेळा का निर्गुण-निराकार ब्रह्म किसी एक या अनेक नामों में अभिव्यक्त होते रहे, परंतु ब्राह्मणवादी सोच में बसा पौराणिक अवतारी पुरूष राम, कृष्ण, विष्णु या हरि का इनके निर्गुण रूप से दूर-दूर का संबंध नहीं। उनका 'आतमराम' देह रहित है इसलिए निर्गुण भी। निर्गुण संतों के ये पद इस दृ-टि से विचारणीय है कि उनमें देहधारी भगवानों के गुणों का अभाव है। वे किसी से छल-कपट नहीं करते, किसी का वध या किसी को सताते नहीं। सगुण भगवान के इन गुणों को निर्गुण तत्व में निर्गुण संतों ने स्वीकारा नहीं।

### 13.4.3 निर्गुण और अद्वैत

अद्वैत के मार्ग से ब्रह्म को जाना जा सकता है। ब्रह्म वेदांत का विषय है और उपनिषद वेदांत कहलाते हैं। ब्राह्मणवाद को मजबूत करने के लिए वेदों का सहारा लिया गया। वेद सामंतों अर्थात् क्षत्रियों की विद्या भी, जिसे ब्राह्मणों ने जान लिया और इसके द्वारा समाज पर अपना प्रभुत्व कायम किया।

ब्राह्मणवाद और वेदों के अंतर को समझाते हुए डॉ. आंबेडकर ने लिखा है "ब्राह्मणवाद जगत को मिथ्या नहीं मानता, परन्तु वेदों का विश्वास मिथ्यावाद है। दोनों के बीच यही मौलिक भेद है। ब्राह्मणवाद का सार है, विश्व सत्य है और विश्व के सत्य के पीछे ब्रह्म है। इसलिये ब्राह्मणवाद के प्रत्येक तत्व का सार ब्रह्म है।"

डॉ. आंबेडकर ने ब्राह्मणवाद के ब्रह्मनिर्मित वेद, ईश्वर धर्म वर्ण और जाति का विरोध करते हुए जो तर्क दिए हैं उनका आधार बुद्ध का अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, प्रत्तित्यसमुत्पाद, शून्यवाद, क्षणिकवाद, अनीत्यवाद जैसे तर्काधारित विज्ञानवादी भौतिकवादी दर्शन है। ब्राह्मणवाद ने ब्रह्म के मिथक को रचकर उसके द्वारा लिखित वेदों को अपरिवर्तनीय बताकर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की धर्म आधारित जड़वादी कृत्रिम संरचना को निर्मित किया।

इसके द्वारा खुद का वर्चस्व, श्रेष्ठत्व मनवाने के लिए तमाम कर्मकांड, अंधविश्वास, अवतारवाद जैसे मिथ्या मनगढंत प्रपंच रचे। लगभग साढ़े तीन हजार वर्षों से अपरिवर्तनीय गुलामी की व्यवस्था का संयोजन अपने हाथों में रखा। धर्म के आतंक का यह साम्राज्य आज भी बिना सायास धर्मभिरू, अंधविश्वासी, अनपढ़ समाज को इसके प्रभाव से हटने नहीं देता। परिणामतः परजीवि ब्राह्मणवाद धर्म, ईश्वर, वर्ण और जाति की लाठी से बहुजन समाज को अंधे कुएं की ओर आसानी से धकेलता हुआ ले जाने में आज भी सफल हो जाता है।

पूनर्जन्म, कर्मवाद और भाग्यवाद के फैलाए इस अवैज्ञानिक सोच का विरोध निर्गुण संतों ने जिस तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक दर्शन के आधार पर किया था वह आज भी हमारे लिए दिशा दर्शन न करने में सफल हो सकता है।

## 13.5 पोथी और ज्ञान का निषेध

पोथी और ज्ञान के बारे में भी संतों के विचार अलग है। यह दूसरी बात है कि वे कोरे ज्ञान और सच्चे ज्ञान की दो सारणियाँ बनाते हैं। वेद, पोथी और इससे प्रकट होने वाला ज्ञान वर्णवादी है तो वह गलत है कोरा है। पाखण्ड है। जब कि दूसरे ज्ञान का अर्थ प्राणीमात्र में एकता-समानता प्रेम देखना है। संत कवि अपने को दलितत्व एवं दासत्व से तो मुक्त करता ही है, वह गुलाम बनाने की मूल विचारधारा को ही नष्ट करना चाहता है। पढ़ा लिखा विद्वान वह है जो विभेद नहीं मानता। पहले इन्हीं अर्थो में ब्राह्मणवाद तथा पोथी ज्ञान के संदर्भ में इसे लेना होगा। पुनः इसकी बारीक व्याख्या द्वारा हम उस नये भाव बोध की ओर ले जा सकते हैं, जो निर्गुण संत काव्य का काम्य है।

कबीर ने कहा -

*पंड़िया कौन कुमति तोहिं लागे।*
*बूढ़हू गे परवार सकल स्यों राम न जयहु अभागे।*
*वेद पुरान पढ़े का किया गुन खर चन्दन सा भारा।*
*राम नाम की गति नहीं कैसे उतरसि पारा।*

कबीर ने यहाँ वेद पुरान को ब्राहमण रूपी खर (गदहे) के पीठ पर वेद-पुरान को चन्दन सा बताया है लेकिन यह चन्दन ही गले की फांस है। गुलामी का दस्तावेज है। इसे पढ़ने से कल्याण संभव नहीं -

*चारि वेद पढ़ाई करि, हरि सू लाया हेत।*
*बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूढ़े खेत।।*

दादू का कथन है -

*पढ़ि पढ़ि थाके पंडिता किनहुं न पाया पार।*
*कथि कथि पाके मुनि जना, दादू नाहें आधार।*

संत नामदेव का कहना है -

*नामदेव सब गनीक पुराण।*
*राम नाम को मरमू न जान।।*

पलटूराम ने कहा -

*वेद पढ़ि पढ़ि पण्डित मरिगा, फिरि चौरासी आया है।*
*पलटू दास बात है सह जी, संतन भेद बताया है।।*

क्रमशः उपर्युक्त उद्धरणों को एक क्रम से रखा गया है। 'खर' के सर 'चन्दन' से थोड़े भ्रम की गुंजाईश है लेकिन दूसरी सारणी में स्पष्ट कर दिया 'चन्दन' और वेद ज्ञान से भी मुक्ति पथ नहीं बल्कि गले की फांस है। सच्चा रास्ता तो संतों का बताया हुआ है। आकस्मिक नहीं की वर्णव्यवस्था ब्राह्मणत्व के बाद पोथी का सर्वाधिक विरोध संतों ने किया। कारण स्पष्ट था। पोथी ही शूद्रत्व तथा गुलामी का महत्वपूर्ण दस्तावेज था। उल्लेखनीय है कि निराला ने 'राजे ने अपनी रखवाली का' कविता में स्पष्ट 'ब्राह्मण आये जनता को पोथियों में बाँधे हुए। निर्गुण कवि इस तथ्य से भली प्रकार परिचित थे। यही कारण था कि उन्होंनें ब्राह्मण, वर्णव्यवस्था और उसका आधार पोथी तथा उसमें निहित ज्ञान का अस्वीकार किया।

ज्ञान जो वेद, पुराण उपनिषद से पैदा होता है वह अपने मूल में वर्णव्यवस्था का पोषक है। शूद्र संत कवि इस 'ज्ञान' को 'कभी धोका' 'कभी ठीक से नहीं जाना गया' 'कभी मात्र रटा हुआ' और अंत में इसे बेकार-बेकाम मानते हैं। निश्चित है कि जिस ज्ञान को जानने-पढ़ने का अधिकार शूद्र समाज को था ही नहीं, उस ज्ञान के प्रति तीव्र आक्रोश क्यों न हो। इसलिए संतों द्वारा 'ज्ञान' का निषेध किया गया। लेकिन इसके समानान्तर एक नया ज्ञान रचा गया। दलित चेतना से लैस। समानता का ज्ञान। सर्वप्रथम और मुक्ति का सच्चा पथ। वर्णवादी ज्ञान का आधार ऊँच-नीच, ब्राह्मणवाद, पुरोहितवाद कर्मकाण्ड, वेषभूषा, ब्रह्माचार, शब्द-कर्म, द्वैत, पाखण्ड, लूट कर्म, सन्यास, साधना, श्रम के प्रति घृणित सोच, पाप तथा अपराध बोध आदि भाव विचार थे। संत कवियों ने उपर्युक्त समस्त पाखण्ड ज्ञान के विरूद्ध एक नया ज्ञान रचा उसे सरल, सहज साधना, जीवन के बीच, दिनचर्या के पास, मनुष्य के कर्ममय और प्रेममय जीवन के अनुकूल रचा। इस ज्ञान में वर्णव्यवस्था नहीं, छूत-अछूत नहीं, पाखण्ड, कर्मकाण्ड, अठयाग, पूजा-अर्चना नहीं। किसी प्रकार का नियम-अनुशासन नहीं। सहज रूप से अपराध बोध, पाप बोध से मुक्त सर्वहितकारी ज्ञान। संत काव्य का यही ज्ञान दलित चेतना का आधार बनता है। अब तक हिन्दी के आचार्यों ने वर्णवादी धर्म की विकृतियों में सुधार के प्रयत्न के रूप में संतों के पाखण्ड विरोध को देखा है। लेकिन यह बात सच नहीं अर्ध सत्य है। संतों ने उस ज्ञान के समानान्तर एक नये प्रकार के ज्ञान की ओर कदम बढ़ाया। यह परिवर्तनकामी चेतना अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा इस नुक्ते को ध्यान में रखा जाना चाहिए। जैसे कबीर आदि संतों के ज्ञान का मूल तत्व 'सच' है। वह भी 'आखिन देखा' अर्थात् अनुभव संगत। ब्राह्मणवादी धारणा में ये दोनों तत्व नहीं है। आंखिन देखी ज्ञान धारा का विश्वास है कि 'सच' से बड़ा कोई तथ्य नहीं, झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं। सहज, साधना। 'सह जहि विषया तजा'। मन चंगा तो कठौती में गंगा।

सार रूप में मन आत्मा तथा सच्चाई का नया धर्म-पंथ परम्परित धर्म साधना का सुधार नहीं बल्कि उसके विरूद्ध नये ज्ञान का सृजन है।

## 13.6 मन्दिर-मस्जिद, माया तथा ईश्वर के प्रति संतों की दृष्टि

संत काव्य में सामाजिक विामता, पाखण्ड और ब्राह्मणवाद के तीव्र विरोध के साथ बड़ी मात्रा में ऐसी रचनाएं है जिनमें बार-बार माया, जीन, ब्रह्म, ईश्वर, मुक्ति, षडचक्र, कुण्डलिनी, नामजप, गुरू महिमा, विरह वेदना, परम तत्व की प्राप्ति आदि शब्द तथा विषय भाव वर्णित हैं। ब्राह्मणवाद, वर्णव्यवस्था तथा पोथी ज्ञान के विरोध तथा नये पन्थ रचने के बावजूद संतकाव्य धारा को उपर्युक्त अवधारणाओं तथा विषय की व्याख्या करनी पड़ी। क्या दलित कवि अपने अंतिम निकर्षों में पूरी तरह ब्राहमणधर्म को नकार नहीं पाये, या आज उपर्युक्त विषय जो संपूर्ण दलित समाज की गुलामी के कारण रहे हैं इसकी चर्चा क्यों? इसे कैसे समझा जाय। शूद्र संतों द्वारा इस रहस्य साधना अथवा दार्शनिक विषय

का चयन क्या मात्र समय-समाज की विवशता थी या पूर्ववर्ती नाथों सिद्धों के विचारों का आगे प्रसार करने का दायित्व उन्होंने स्वयं ले लिया था? आज दलित दृष्टि से इसकी व्याख्या कैसे की जाय। यह मानने का कोई आधार नहीं कि निर्गुण शूद्र संत विवश लोग थे अथवा जैसा कि बहुत सारे हिंदी के आचार्य 'मसी कागज छुयों नहीं' स्पष्ट रूप से अनपढ़ और शास्त्र ज्ञान से रहित थे ऐसा मान लेते हैं। संत कवि न अनपढ़ थे और नहीं ब्रहम विद्या की कूट रचना से अपरिचित। बारिकी से विचार किया जाय तो हम पंक्ति दर पंक्ति उस सच को प्राप्त कर लेंगे जो संतों का सार्थक दलित विमर्श हे। ईश्वर, माया, मन्दिर और साधना पद्धति के संदर्भ में संतों के क्या विचार है। पहले ईश्वर जो ब्राह्मणवाद के चिंतन की धुरी है उसे समझ लें। ईश्वर सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों में विद्यमान है और दूसरे कण-कण में व्याप्त रहकर वह ब्राह्मण, गौ वर्णव्यवस्था का पोषण करता है। संतों का ईश्वर पोथी तथा मन्दिर में तो नहीं ही है। तब वह निराकार निर्गुण होकर भी उपनिाद तथा वेदान्त के निर्गुण से कैसे अलग है। उदाहरण प्रस्तुत है -

*तहां जाहु पाट पटम्बर, अगर चन्दन घसि लीना।*
*आई हमारे कहां करोगे, हम तो जाते कमीना।*

*काहे को दुख दीजिए, साई हे सब माहि*
*दादू एके आत्मा, दूजा कोइ नहिं। (दादू दयाल)*

*भूखे भगति न कीजै, यह माला अपनी लीजै (कबीर)*
*इस क्रम में कबीर की एक कविता अत्यन्त सार वान है -*
*माधो कैसी बनै तुम संग, आयु न देहु न लेबउ मंगे।*
*दूई सेरे मागद चूना, पाड धीड संग लूना।।*
*अध सेर मागद दाले, मोकड दोनो वकत जिबाले।*
*खाट मागद्र चडपाई, सिराहाना और डलाई।*
*ऊपर माग्रऊ सीधा, तेरी भगते करे जनु बीधा।*

रैदास कहते हैं -

*साधो! का सास्त्रन सुनि कीनौ,*
*अनपावनी भगाते न ही साधी, भौ अन्न न दी सो।*

कबीर की एक और साखी दृष्टव्य है

*भूखा-भूखा क्या करे कहाँ सुना वे लोग,*
*भॉड़ा गढ़ि जिन मुख दिया, सोई पुखन जोग।।*

पलटूदास ने लिखा कि

*पलटू रहे गरीब होय भूखे को देखाय,*
*सत्तन के सिर ताज है, सोई सन्त हो जाय।*

रैदास का प्रसिद्ध पद है

*दारिद्र देखि सब कौ हँसे, ऐसी दसा हमारी*
*असट दसा सिधि करत ले, सम कृपा तुम्हारी।।*

उपर्युक्त लगभग सारे उद्धरण भूख, गरीबी, दीनता दासत्व ले फिरे दलित समाज की ओर से ईश्वर नाम को सम्बोधित करते हुए भक्ति के मर्म के लिए इससे मुक्ति की जरूरत प्रस्तुत करते हैं। शूद्र संतों की इस भक्ति की शर्त वेदान्ती निर्गुण से उन्हें बाहर करती है।

पोथी और मन्दिर में कैद ईश्वर तो उनका था ही नहीं। क्योंकि वहाँ तक उनका आना-जाना नहीं था। इसलिए निर्गुण की रचना उन्होंने की लेकिन वह निर्गुण भी भूख-दरिद्रता वर्णवाद का रचयिता है।

तो वह संतों को स्वीकार संतों ने इस प्रश्न पर ईश्वर की शाश्वत चिंतन परंपरा है लेकिन संत काव्य में क्या कुन्डली जागरण, बार-बार संतों ने सहज साधना की वकालत की है।

हद चलै सो मानवा बेहद चले सो सञ्ज्ञ
हद-बेहद दोनों तसै ताका मता अगाध (कबीर)

## 13.7 सारांश

भक्ति आन्दोलन तत्कालीन समय का एक देशव्यापी आन्दोलन था जिसने संपूर्ण देश को सांस्कृतिक सूत्र में बाँधकर एक समताबोधी समाज के निर्माण का कार्य किया। इस अर्थ में सामाजिक–सांस्कृतिक आन्दोलन का वह रूप ले चुका था। जिसमें उत्तर में कबीर और उनका निर्गुण पंथ एक विरोधी शक्ति के रूप में विपक्ष में खड़ा हुआ था जिसने हिंदू–मुस्लिम सामंती शोषण और उसकी सामाजिक–धार्मिक कट्टरता के प्रति विद्रोह किया था। निर्गुण संतों के साथ ही इसमें सूफी संत भी सम्मिलित थे। उत्तर भारतीय भक्ति आन्दोलन में निर्गुण और सगुण के बीच विरोध और प्रतिरोध की स्थिति तत्कालीन सामाजिक–सांस्कृतिक अन्तर्विरोधों की एक नयी अभिव्यक्ति के रूप में हमारे सामने आती है। उत्तर में जिस प्रकार सगुण और निर्गुण पंथ विरोधी के रूप में एक दूसरे के सामने खड़े थे उस प्रकार का विरोध अन्य क्षेत्रों में नहीं रहा। दक्षिण के आलवार भक्त अथवा महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, तुकाराम और चोखामेळा में सगुण और निर्गुण और निर्गुणोपासना का समन्वय दिखाई देता है।

महाराष्ट्र में संत परम्परा का विकास संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम तथा चोखामेळा द्वारा सगुणोपासना और निर्गुणोपासना का विरोध नहीं हैं। जहाँ उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति के भ्रमर गीतों के माध्यम से निर्गुण की आलोचना का जोरदार अभियान चलाया गया था। सगुण भक्ति में अवतारवाद को प्रतिष्ठा मिली और कर्मफल, भाग्यवाद, पुनर्जन्म की वेदसम्मत और शंकराचार्य द्वारा प्रचारित मान्यता को प्रश्रय दिया। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था का समर्थन तथा सामंती मूल्य व्यवस्था की मजबूती के लिए तुलसीदास ने पूरजोर कोशिश की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के अन्य क्षेत्रों की तुलना में उत्तर भारत का भक्ति आंदोलन सरल सपाट न होकर तत्कालीन दो विरोधी सामाजिक सांस्कृतिक विचार धाराओं का संघर्ष था। मात्र दो उपासना पद्धतियों के बीच की टकराहट नहीं थी बल्कि दो वर्गों के हितों के बीच का संघर्ष था। एक ओर शक्तिशाली सामंत, उच्चवर्णीय प्रस्थापित ब्राह्मण वर्ग था तो दूसरी ओर सदियों से उपेक्षित, उत्पीड़ित–शोषित निम्नजातीय बहुसंख्यक वर्ग था। इनके बीच का संघर्ष भक्ति के सगुण और निर्गुण धारा का संघर्ष था। कबीर बहुजन के पक्ष में खड़े थे तो तुलसीदास वर्ण–जाति व्यवस्था समर्थक वर्ग के पक्षधर थे। घोषित रूप में कबीर ने धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त कर्मकाण्ड के आधिक्य पर, सामाजिक क्षेत्र में वर्ण व्यवस्था जन्य जाति–पांति, ऊँच–नीच, छुआछूत के अभिशाप पर खुलकर प्रहार किया। अवतारवाद के ढकोसले का जोरदार खण्डन किया। ब्राह्मणवाद के फैलाए हुए धार्मिक, अन्यायपूर्ण आडम्बरों का तर्कपूर्ण विरोध किया। कबीर ने बहुजनों को जागरूक करने की निरंतर कोशिश करते हुए शास्त्रसंमत ब्राह्मण श्रेष्ठता, मन्दिर–मस्जिद, मूर्तिपूजा, रोजा–नमाज, तीर्थ स्थान, विभिन्न पर्व त्यौहार आदि

सामाजिक–धार्मिक विकृतियों का खुलकर विरोध किया। कबीर ने भारत में इस्लाम के प्रवेश के समय ही भारतीय जातिव्यवस्था की विकृतियों और हिंदू–मुस्लिम साम्प्रदायिक विद्वेश के परिणामों को गंभीरतापूर्वक समझ लिया था। इसलिए हम देखते हैं कि उन्होंने राम–रहीम की एकता के साथ ही ईश्वर के समक्ष मनुष्य–मनुष्य के बीच समानता के लिए प्रखर आंदोलन चलाया। कबीर दर्शन को ग्रहण करने में सर्व सामान्य जन ने पहल की और इस समतामूलक विचार के प्रभाव स्वरूप निम्न जातियों से अनेक संत कवि सामने आए। उनके भीतर जगे आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और समता के विचार प्रवर्तन के अभियान के कारण समाज को उन्हें मान्यता देनी पड़ी। भक्ति आंदोलन एक देशव्यापी आंदोलन बनता गया और संपूर्ण देश को सांस्कृतिक सूत्र में बांधने का अतुलनीय कार्य किया। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम क्षेत्रों को एकसूत्र में बांधने का, भक्ति के क्षेत्र में, सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में समता के संदेश के द्वारा एक अखंड देश की तस्वीर सर्वप्रथम उभरी थी। धर्म और संस्कृति के नाम पर जाति और सम्प्रदाय के नाम पर देश और समाज को विखण्डित करने वाले ब्राह्मणवाद के विरोध में उठा यह क्रांतिकारी सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन था। भक्ति आंदोलन की इस विरासत को ही राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन जैसे संघर्षपूर्ण क्रांतिकारी आंदोलन द्वारा आगे बढ़ाकर देश को एकता के सूत्र में पिरोया था, और देश की स्वाधीनता को ठोस रूप दिया गया था। निर्गुण संतों द्वारा सामाजिक–सांस्कृतिक तथा धार्मिक समता के महत्वपूर्ण मुद्दों को स्वाधीन भारत के संघीय संविधान में पहली बार कानून का दर्जा मिला, उनमें से अधिकांश को मौलिक अधिकारों के रूप में प्रतिष्ठा मिली। धर्म, जाति, सम्प्रदाय के नाम पर देश और जनता को बाँटने वाली विरोधी शक्तियों की साजिशों पर कानूनी बंदिशे लगाने का क्रांतिकारी कार्य देश के संविधान निर्माण समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने किया। देश की जनतांत्रिक व्यवस्था जो एकता और धर्मनिरपेक्षता को सुरक्षितता प्रदान करती है जिसे वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा के कट्टर विरोधी डॉ. आंबेडकर ने संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा कानूनी दर्जा प्रदान करके देश की स्वतंत्रता और एकता को कायम रखे जाने का बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। आज के समय में जाति–संप्रदायवादी ताकतें जब–जब देश की सामाजिक–सांस्कृतिक एकता विरोधी कदम उठाने की कोशिश करती है, तब देश की अखंडता और एकता को संवैधानिक कानून और जनतांत्रिक व्यवस्था ही बचाती है।

## खंड के प्रश्न

1) कन्नड की भक्ति-साहित्य परंपरा का परिचय दीजिए।
2) शरण साहित्य की पूर्वकालीन परिस्थिति का विवरण दीजिए।
3) वचन साहित्य की विशे-ताओं को बताइए।
4) हरिदास साहित्य का परिचय दीजिए।
5) सर्वज्ञ पर एक निबंध लिखिए।
6) वीरशैव पुराणों का परिचय दीजिए।
7) तेलुगु के प्रमुख संतों का परिचय दीजिए।
8) तेलुगु संत काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
9) निर्गुण संतों की विचारधारा पर प्रकाश डालिए।
10) निर्गुण संतों के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

SOH-IGNOU/P.O. 5T/May, 2014

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ISBN : 978-81-266-6667-6